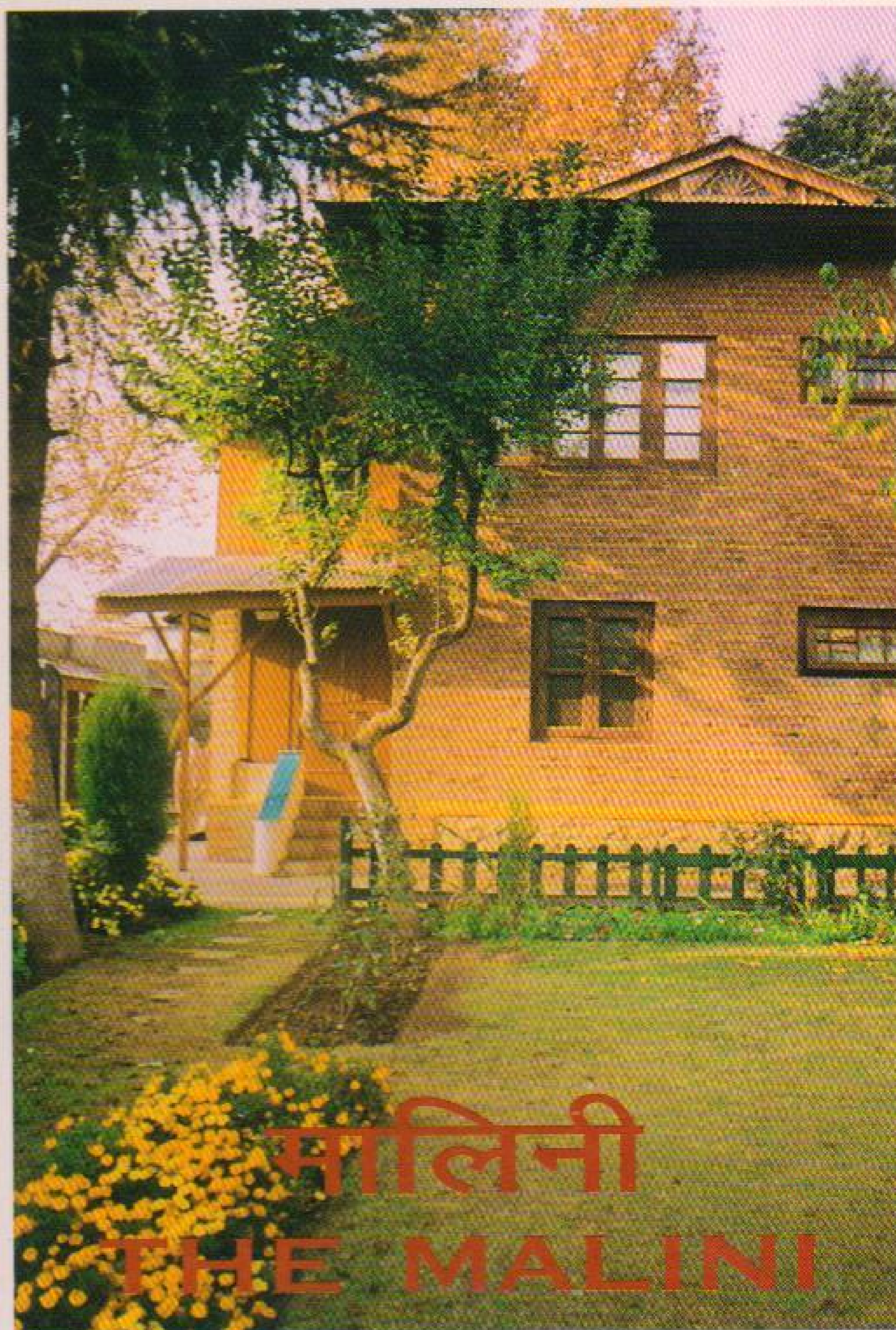
APRIL, 2003




# ISHWAR ASHRAM TRUST

ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

Vol. IX NO. I ISSUE XXXIII
APRIL, 2003

## जन्म जयन्ती विशेषांक




# मालिनी

# THE MALINI

*Abhinavagupta about Mālinī*

यन्मयतयेदमखिलं, परमोपादेयभावमभ्येति।
भवभेदास्त्रं शास्त्रं, जयति श्रीमालिनी देवी।।

*Śrī Mālinī Devī is ever victorious. In union with her all the treatises of non-dualistic order achieve the nature of divine potency.*

*T.A.A. XXXVII*

**ISHWAR ASHRAM TRUST**
ISHBER (NISHAT), SRINAGAR, KASHMIR

***Publishers :***
Ishwar Ashram Trust
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

***Head Office :***
Ishwar Ashram
Ishber (Nishat), Srinagar
Kashmir.

***Administrative Office :***
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 016
Tel.: 553179, 555755

***Delhi Office :***
Ishwar Ashram Bhawan
R-5/D Pocket, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Tel.: 26958308, 26974977
Telefax: 26943307

April, 2003
Price: Rs. 25.00
Yearly subscription: Rs. 100.00


Produced on behalf of Ishwar Ashram Trust
by Paramount Printographics, Daryaganj, New Delhi-2. Tel 2328-1568, 2327-1568

ॐ नमः परमसंविद् चिद्वपुषे

# विषय सूची : Contents

## संपादक की लेखनी से

मालिनी का यह विशेषांक ईश्वरस्वरूप सद्‌गुरु महाराज की सत्तानवीं जन्म जयन्ती पर प्रस्तुत करते हुए हमें अपार प्रसन्नता हो रही है। सद्‌गुरु महाराज की यह जन्म जयन्ती हम सभी सद्‌गुरु प्रेमियों, साधकों, भक्तों और दानवीरों के लिए नई उत्तेजना और नई स्फूर्ति की संवाहिका है। सद्‌गुरु महाराज का यह प्रादुर्भावदिवस शास्त्रसम्मत संपूर्ण मुक्ति लक्षणों का प्रपूरक है, कल्पलता की तरह सर्वकामना साधक है, शुभाशुभ विवेक शालिनी मनीषा का सृष्टा है, सुसंस्कृत शुद्धविद्या का विस्तारक है। स्थावर-जंगम जगत्‌ का त्राता है, परतत्त्वरूपी केतकी कुसम सौरभ का रसपान कराने में रसिकहै, दिव्य रस के माधुर्य का वितरक है, आनन्दमयी लीलाओं के आनन्दातिरेक से गात्र रोमांचक है, चित्सूर्य के समान परम भास्वर है, राग द्वेष, सुख दुख शीतोष्ण, धर्माधर्म आदि द्वन्द्वों का प्रशामक है, पराशान्ति प्रदाता है, जगत कल्याणकारिणी शक्ति से संवलित है, अखिल ब्रह्माण्ड के वैभव को अनायास देने के लिए आकुल है, मानव हृदयोचित सुरम्य भावों का उद्‌भावक है, परम मांगलिकरूपधारी उत्सव के समान श्रवणमात्र से ही आनन्दवर्धक है, मतमतान्तरों में भटके हुए जीवों को ज्ञानज्योतिदायक है, सत्त्वगुणप्रधान व्यक्तियों का एकमात्र आश्रय है त्रितापसन्तप्त जीव को सहजशान्ति प्रदाता है, मायारूपी आवरण से आवृत भक्तों के नेत्रों का अमृतांजन है, सांसारिक कर्मो से विरति और अन्यमनस्कता उत्पादक है, ज्ञान वैराग्य गरिमा और योग आदि गुणों का भण्डार है, जीवनमृत्युरूपी रोग के लिए एकमात्र महौषधि है, हृदय कमल को प्रफुल्लित करने के लिए उदीयमान भास्कर है, स्वरूपरूपी भागीरथी को सांसारिक तुच्छ प्राणियों तक पहुंचाने के लिए सशक्त है, दर्शन, ध्यान, जप, स्मरण में अहर्निश आनन्दमग्न करने के लिए लालायित करता है, भाग्यशाली भक्तवृन्दों के लिए वाचिक, मानसिक कायिक और आध्यात्मिक शक्ति तथा आनन्द का सरस स्रोत है और अनिर्वचनीय शिव तत्त्व की सिद्धि को सहर्ष प्रदान करता है। हे सद्‌गुरु महाराज! आपके इस आविर्भाव दिवस के महाप्रताप का गान करने में हम किसी प्रकार से भी सशक्त नहीं है। हम पर कृपा कीजिए, हमारी न्यूनताओं और अवधानराहित्य की ओर तनिक भी ध्यान न दीजिये अपनी प्रतिज्ञा का पालन करके हम सबको इस भवार्णव से पार कीजिए।

**सद्‌गुरोः नाममात्रेण पापपुंजं प्रणश्यति।**
**किं पुनर्दर्शन स्पर्श पादवन्दन सेवनैः॥**

**जय गुरुदेव !**

सरिता विहार स्थित ईश्वराश्रम के लिए ईश्वरस्वरूप स्वामी जी महाराज का आजका यह जन्म दिवस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आज के ही दिन दिल्ली वासी भक्तजनों ने नये आश्रम के अत्याधुनिक सत्संग भवन के, सद्गुरु महाराज की उपस्थिति में, उद्घाटन समारोह का शुभारम्भ किया। भक्तजनों, सतृशिष्यों, प्रेमियों और उदार दानवीरों के अकथनीय सहयोग के परिणामस्वरूप आज के दिन का यह परमसौभाग्य हम सबको प्राप्त हो रहा है। निर्माण सम्बन्धी कुछेक तकनीकी त्रुटियों के कारण इस सत्संग भवन की निर्माण प्रगति में बाधा अवश्य आई पर सद्गुरु महाराज की अपार कृपा से सारी त्रुटियों का समाधान निकल आया और आज के महोत्सव पर यथेच्छित आकार का ढ़ांचा साकार हो उठा जिससे सारे भक्तजनों, श्रद्धालुओं और दानवीरों की हार्दिक इच्छा आज सम्पूर्ण हुई। आशा है कि आगे का निर्माण कार्य भी यथावत् चलेगा और दानवीरों की महिमा की गाथा में नये नये अध्यायों को जोड़ेगा। हमारे युवा इन्जीनियर श्री देवजी मुन्शी धन्यवाद के पात्र हैं जो अपनी कार्य व्यस्तता को एक ओर करके इस सत्संग भवन के निर्माण कार्य में जी जान से जुट गयें। सद्गुरु महाराज उनकी निःस्वार्थ सेवा को सफल करके इनके जीवन को सुखमय बनायेगा यह हमारी पूर्ण आशा है। ईश्वर आश्रम ट्रस्ट उन दानवीरों का परम आभारी है जिन्होंने अपनी आर्थिक कठिनाइयों की ओर ध्यान दिये बिना मुक्त हृदय से मोटी धन-राशि दान देकर अपनी दानवीरता को प्रशस्त बनाया। सद्गुरु महाराज उनके इस महनीय कार्य की अनदेखी कदापि नहीं करेगें। उनका एक एक पैंसा उनके इहलोक और परलोक का भोगमोक्षसाधक होगा, ऐसा सत्-शास्त्रों का भी निर्देश है। हमारे इस दिल्ली केन्द्र के संयोजक श्री अवतार कृष्ण गंजू दानवीरकर्ण के साक्षात् अवतार हैं जिनका इस निर्माण कार्य की प्रगति के साथ विशेष सम्बन्ध है। ये समय की सीमा अथवा आर्थिक सीमाओं की चिन्ता किये बिना अपने नियत पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। अपने गुरु भाईयों और बहिनों के हित के प्रकामकामी गंजू जी ईश्वर आश्रम के सारे केन्द्रों के चेहतेरे हैं। सद्गुरु महाराज इनके लिए कल्पवृक्ष बनकर सदा इनकी ईच्छापूर्ति करें।

सद्गुरु महाराज की इस जन्म जयन्ती पर प्रधान केन्द्र श्रीनगर कश्मीर में जगत् कल्याण के लिए विगत वर्षों की तरह इस वर्ष भी महान यज्ञ का आयोजन किया गया। विषम परिस्थितियों के होते हुए भी तीन चार सौ भक्तजन प्रसाद प्राप्ति से अनुगृहीत हुये। ईश्वर आश्रम भवन महेन्द्र नगर-जम्मू में सवेरे से ही धार्मिक आस्था वाले भक्तों की, सद्गुरु महाराज के प्रेमियों और शिष्यों की भीड़ क्षण क्षण बड़ने लगी और रंगारंग कार्यक्रम में सैकड़ों लोगों ने भाग लिया और अन्त में सद्गुरु महाराज के विशेष दिवसीय प्रसाद को पाकर अपने को कृतकृत्य माना। सरिता विहार दिल्ली स्थित ई श्वर आश्रम भवन की गाथा

इस वर्ष कुछ अनोखी थी। दिल्ली के दूर दूर प्रान्तों से आकर सद्गुरु महाराज के अनुयायियों, शिष्यों और प्रेमियों ने जन्म-जयन्ती कार्यक्रम में सम्मिलित होकर इस उत्सव की शोभा में चार चांद लगाये। अपार जनसमुदाय की समुपस्थिति से इस वर्ष की जन्म जयन्ती का स्वरूप ही अनोखा था। सायंकाल तक लोगों का तांता बंधा रहा। लम्बी पंक्ति में खड़े श्रद्धालुजन कड़ी धूप की परवाह न करते हुए प्रसाद प्राप्ति के लिए उत्सुक रहे। भजन सन्ध्या के कार्यक्रम में सम्मिलित सैकड़ों संगीत प्रेमी संगीत के स्वरों के साथ एक तान होकर गुरुपूजा में तल्लीन थे। इस प्रकार प्रातः से सायं तक इस आश्रम भवन का सारा वातावरण सद्गुरु महाराज के श्रद्धा सुमनों से महक रहा था। समय समय पर "जय गुरुदेव" की गूंज से सारा आश्रम परिसर गूंजता रहा।

'ईश्वर आश्रम ट्रस्ट' उन सभी श्रद्धालुजनों का आभारी है जिन्होंने ईश्वर आश्रम के किसी एक केन्द्र में सम्मिलित होकर इस महान उत्सव की शोभा बढ़ाई।

समस्त ईश्वर आश्रम परिवार की ओर से सद्गुरु महाराज की जन्म जयन्ती पर विशेष बधाईयां।

**जय गुरुदेव !**

*– प्रो. मखनलाल कुकिलू*

शुक्रवार, मई 9, 2003

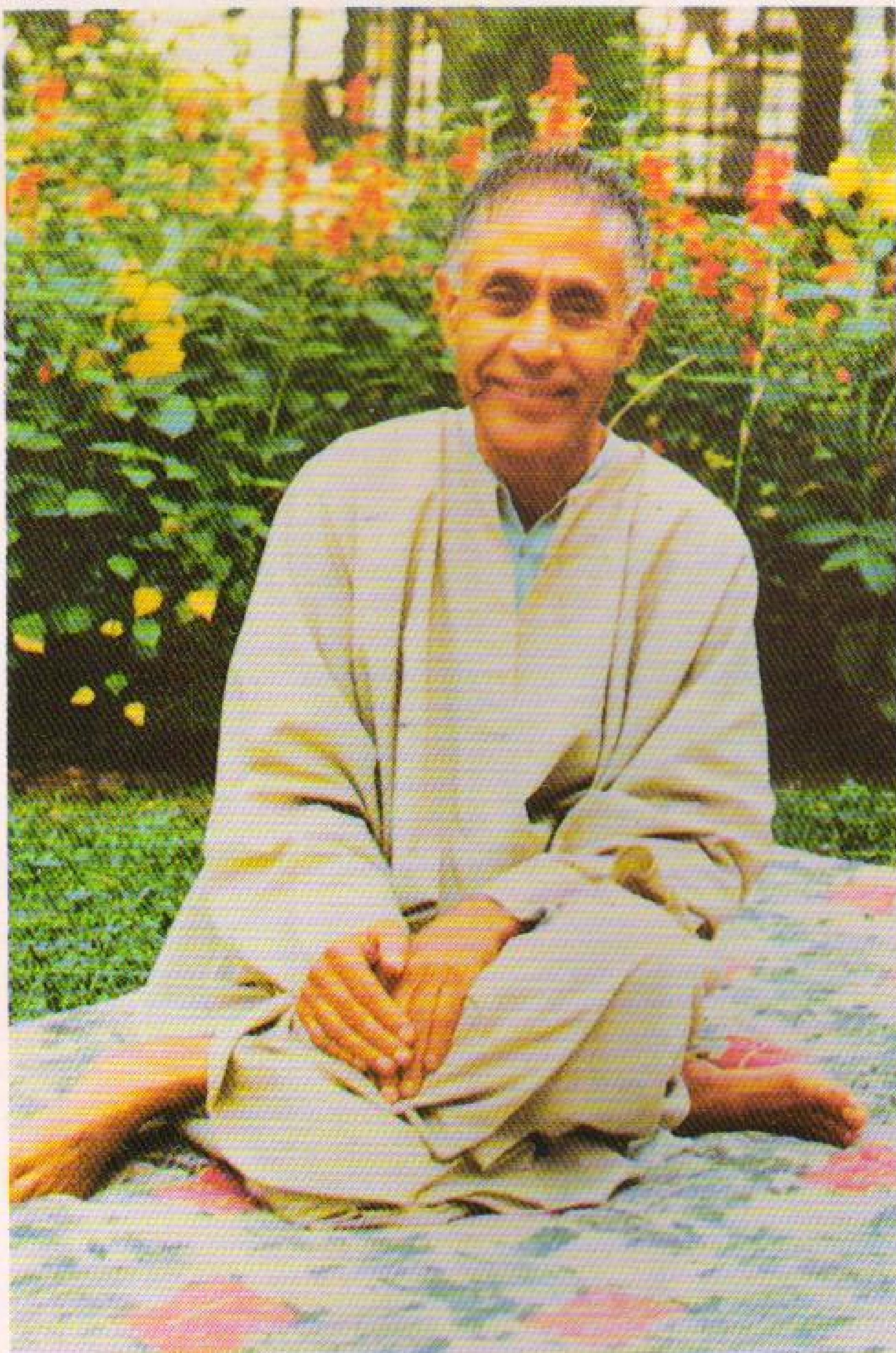
**MALINI** - Quarterly Magazine

*Annual Subscription :* Rs.100.00
*Price Per Copy :* Rs.25.00
*Overseas Subscription :* US$25.00

*All correspondence & subsciption must be sent to the Administrative Office :*
Ishwar Ashram Bhawan
2-Mohinder Nagar
Canal Road
Jammu Tawi - 180 002.
Tel. : 2553179,2 555755

*Information regarding printing & publishing, etc. can be had from Branch Office:*
F-115, Sarita Vihar, New Delhi - 110 044
Phone : 26943307

## श्री ईश्वरस्वरूप लक्ष्मण जू महाराज



आविर्भावदिवस
9-5-1907

महासमाधिदिवस
27-9-1991

# ŚIVA SŪTRAS

## Vimarśinī Sanskrit Commentary of Śrī Kṣemarāja

*Īśvara Svarūpa Svāmī Lakṣmaṇa joo Māharāja*

*(Continued from last issue)*

एवं ध्यानाख्यमाणवमुपायं प्रदर्श्य, तदेकयोगक्षेमान्प्राणायाम-धारणा-प्रत्याहार-समाधीन् प्रदर्शयति-

Thus the process of meditation is already explained now the other means of meditation which are interrelated with this process of meditation, Prāṇāyāma, dhārnā, Pratyāhāra and samādhī, are now to be explained in this sūtra:-

नाड़ीसंहार-भूतजय-भूतकैवल्य-भूत पृथक्त्वानि ॥ ५॥

*(NādīSamhāra bhūtajayabhūta kaivalya bhūta pṛthvaktvāni)*

A yogi must develop the power of absorbing prāṇa and apāna into suṣumnā the middle path of lord ship over five elements of isolating ones own self from the five elements and residing in the field beyond the five elements.

नाडीनां-प्राणापानादि वाहिनीनां सुषीणां, संहारः-प्राणापानयुक्त्या एकत्र उदान वह्न्यात्मनि मध्यनाड्या विलीनतापादनम्। यदुक्तं श्रीमत्स्वच्छन्दे-

अपसव्येन रेच्येत् सव्येनैव तु पूरयेत्।
नाडीनां शोधनं ह्येतन्मोक्षमार्ग पथस्य च॥
रेचनात्पूरणात् रोधात् प्राणायामस्त्रिधा स्मृताः।
सामान्या बहिरेते तु पुनश्चाभ्यन्तरे त्रयः॥
आम्यन्तेरण रेच्येत् पूर्येताभ्यन्तरेण तु।
निःस्पन्दं कुम्भकं कृत्वा कार्याश्चाभ्यन्तरास्त्रयः॥ इति।

नाड़ी संहार - Merging of breathing movements, भूतजय - attaining the control on gross elements when you have this quality then outwardly if your are suffering with pain, internally you do not, this type is called controlling of gross elements; भूतकैवल्य- taking away mind from all gross elements or objects of senses and directing towards the centre of movement of breath. भूतपृथक्त्वं - carrying away your consciousness from the clutches of elementary field. For instance if you are feeling actual pain in your leg,

you separate your consciousness from that and you are not feeling pain at all. योगिनां भावनीयानि इतिशेषः- in short these powers are experienced by yogis. नाडीनां - मध्यनाड्यां विलीनतापादनम् merging of breathing movements in he central vein (suṣumnānāḍī) by maintaining the awareness of breath in inhailing and exhailing you carry these breaths to the central vein. In Svacchanda Tantra it is said - अपसव्येन रेच्येत् - by right nostrl you should take out breath, सव्येनैवतु पूरयेत् - by left nostrl you should. take in, नाडीना शोधनं ह्येतत् - this is the purification of all veins, मोक्षमार्गपथस्य च - and purification of the path towards मोक्ष- the final liberation. This retention of breath is done in three ways रेचनात् - by taking your breath out in the centre of the navel पूरणात् - by taking it to the centre of the navel रोधात् - by holding or by retention of breath, सामान्याबहिरेतेतु प्राणायामस्त्रिधा स्मृताः - these three ways of Praṇāyāma-retention of breath, are gross and these ways are common and ordinary ways to every body. But there are other internal ways which are uncommon. आभ्यन्तरेण - you have to take your breath in the centre of navel, put it a bit push in the centre of navel (this is internal exhailing) and you should again take it to the centre of navel, give it push and take it back to the navel. You have not to breeth in or out. This is uncomon way of exercise. This कुम्भक functions in three ways. Taking in, pushing in and retainning, by all these three ways you are not taking out breath, you are only retaining, so it is कुम्भक These are done by advanced yogi. This is not common. This is what is explained in नाड़ी संहार। Now he explains भूतजयः- भूतानां - पृथिव्यादीनां, जयो - धारणाभिर्वशीकारः। यथोक्तं-

वायवी धारणाङ्गुष्ठे आग्नेयी नाभिमध्यतः।
माहेयी कण्ठदेशेतु वारुणी घण्टिकाश्रिता।।
आकाशधारणा मूर्ध्नि सर्वसिद्धिकरी स्मृता। इति।
भूतेभ्यः कैवल्यं - चित्तस्य ततः प्रत्याहरणम्।
यदुक्तं तत्रैव (स्वच्छन्दंतत्रे)
नाभ्यां हृदय संचारान्मनश्चेन्द्रिय गोचरात्।
प्राणायामश्चतुर्थस्तु सुप्रशान्त इति स्मृतः।। इति।
हृदयात् नाभौ प्राणस्य, विवयेभ्यो मनसश्च, तत्रैव (हृदि नाभौ वा) संचरणात्

इत्यर्थः। भूतेभ्यः पृथक्त्वं-तदनुपरक्तस्वच्छ स्वच्छन्द चिदात्मता। यदुक्तं तत्रैव (स्वच्छन्द तंत्रे)–

भित्त्वा क्रमेण सर्वाणि उन्मनान्तानि यानि च।
पूर्वोक्त लक्षणैर्देवि त्यक्त्वा स्वच्छन्दतां व्रजेत्।। इति।।

"भूत संधान भूत पृथक्त्व विश्व संघट्टाः" इति यत् पूर्वमुक्तं तत् शाम्भवोपाय समाविष्टस्य अयत्नतो भवति। इदं तु आणवोपायप्रयत्नसाध्यमिति विशेषः। भूतानां जयः just to attain control on these पृथिव्यादीनां five elements from earth to eather धारणाभिर्वशीकारः- by contemplation and control it. यदुक्तं तत्रैव - this is already said in Svacchanda tantra. वायवी धारणाङ्गुष्ठे - whenever you want to control the wind in your body you must put धारणा on the left toe of foot. This धारणा is void. आग्नेयी नाभिमध्यतः- when there is insufficient fire in your body you should meditate in the centre of navel. माहेयी कण्ठदेशेतु- when there is lessening of the flash in your body then to increase that flash you have to put धारणा on earth while keeping your awareness in the pit of the throat. वारुणी घण्टिकाश्रिता-when y ou are drowned in the ocean there you must contemplate on वारुणी- water element which is done at the place of घण्टिका- a small piece of flesh hanging at the throat, आकाशधारणा मूर्ध्नि- धारणा on ether is done on head, सर्वसिद्धिकरीस्मृता - this gives you all powers which are desired. This is called भूतजयः।

Now भूतकैवल्यं - भूतेभ्यः कैवल्यं चित्तस्य ततः प्रत्याहरणं - you have to get rid of the elements by driving back (प्रत्याहरणं) चित्तस्य - your mind from objective field and direct your mind in the centre of breath. Just concentrate on the centre of breath which has gone to objective field. यदुक्तं तत्रैव - this is already said in Svacchanda Tantra:-

नाभ्यां हृदयसंचारात् - direct your consciousness in the centre of navel मनश्च - and direct your mind also to that centre इन्द्रियगोचरात्- and carrying it away from the organ of sences, प्राणायामश्चतुर्थस्तु- this प्राणायम is 4th प्राणायाम, सुप्रशान्त इति स्मृतः- and is held as सुप्रशान्त i.e. you have not to breeth in or out. Four kinds of प्राणायाम are as under: (1) साधारण प्राणायाम (2) बाह्य प्राणायाम (3) आम्यन्तरप्राणायाम (4) सुप्रशान्त प्राणायाम।

हृदयात् नाभौ प्राणस्य-From heart you should direct your heart to the cantre of navel विषयेभ्यो मनसश्च तत्रैव संचरणात् इत्यर्थः-and direct your mind which is swayed by objective pleasures to the centre of navel.

भूतपृथक्त्वानि-भूतेभ्यः पृथक्त्वं-तदनुपरक्तस्वच्छ स्वच्छन्दचिदात्मता-just to carry away your consciousness from gross elements, it happens when one's consciousness is not influenced by the elementary field यदुक्तं तत्रैव- this is already said in Svacchanda Tantra:- भित्वाक्रमेण सर्वाणि-when force of all these gross five elements is subsided, उन्मनान्तानि यानिच-upto the stage of उन्मना beyond समना then by doing this he becomes one with Śiva. भूतसंधान भूत पृथक्त्व विश्व संघइतियत् पूर्वमुक्तं - though these भूत जय etc. are explained in 1st awakening of शाम्भवोपायः way these are said again in this आणवोपाय section also. To clear this the author says तत् शाम्भवो पाय समाविष्टस्य अयत्नतो भवति- the seeker who is established in the trance of शाम्भव समावेश to him these powers come without any efforts इदंतु आणवोपाय प्रयत्न साध्यमिति विशेषः- but these powers to seeker of आणवोपाय come with effort only, this is the difference.

एवं देहंशुद्धि - भूतशुद्धि प्राणायाम प्रत्याहार धारणाध्यान समाधिभिः या तत्तत्तत्वरूपा सिद्धिर्भवति सा मोहावरणात् न तु तत्वज्ञानात् इत्याह- thus purification of body, purification of elementary field (भूतशुद्धि), प्राणायाम - purification of breath, प्रत्याहार- diversion from objective field to your consciousness धारणा one pointed contempelation ध्यान- meditation and समाधिः the state of समाधि by these Yogic energies -the powers which are achieved by the mastery over elementory field, they are all covered by मोह illusion not by getting perfect knowledge of thirty six elements. इत्याह- this is said in next sūtra:-

**मोहावरणात सिद्धिः ॥ ६ ॥**

*(mohāvaraṇātsiddhiḥ)*

Such powers appear only when the veil of ignorance fall in the way of entering into pure God-consciousness.

मोहयति इति मोहः-माया तत्कृतात् आवरणात् प्रोक्तधारणादि क्रम समासादिता तत्ततत्त्वभोगरूपा सिद्धिर्भवति। नतु परतत्त्व प्रकाशः। यदुक्तं श्रीमत्

लक्ष्मीकौलार्णवे–

स्वयम्भूर्भगवान्देवो जन्मसंस्कार वर्जितः।
निर्विकल्पं परं धाम अनादिनिधनं शिवम्॥
प्रत्यक्षं सर्व जन्तूनां न च पश्यति मोहितः। इति।

मोहयति इति मोहः- The energy of illusion which carriers away one's consciousness तत्कृतात् आवरणात्- due to this action प्रोक्त- already said, धारणादिक्रम-धारणा, ध्यान etc. successively समासादिता-achieved, तत्तत्त्वत्वभोगरूपा सिद्धिः- that that particular elementary purification नतु परतत्त्वप्रकाशः- but does not get entry into supreme God consciousness of Lord Śiva.

यदुक्तं श्रीमत्लक्ष्मीकौलार्णवे- as is said in Śrī Lakṣmī Kaulārṇava Tantra:-

स्वयंभूर्भगवान् देवः जन्म संस्कार वर्जितः - स्वयंभूः that who has appered spontaneously by his free will of स्वातन्त्र्य and he has no impression of his repeated births and deaths, निर्विकल्पं परंधाम he is in supreme state beyond worldly thoughts, अनादिनिधनं शिवम् - he is the eternal treasure because Lord Śiva is eternal treasure it is for always and is ever lasting प्रत्यक्षं सर्वजन्तूनां न च पश्यति मोहितः - in each and every moment all actions of limited beings are witnessed by him. One who is carried away from the consciousness of Lord Śiva and is directed to these limited Yogic powers is not competent of experiencing the nature of Lord Śiva. विगलितमोहस्तु - on the contrary whose मोह is already subsided he is not caught in the clutches of limited यौगिक powers. For him:-

मध्यमं प्राणमाश्रित्य प्राणापान पथान्तरम्।
आलम्ब्य ज्ञानशक्तिं च तत्स्थं चैवासनंलभेत्॥

For such a Yogi, आसन- a particular posture, is directing his consciousness between two breaths in the way of inhailing and exhailing. There he must establish the power of awareness that must prevail in continuity. When he is established there this is आसन for that Yogi. After आसन this Yogi has to practice प्राणायामः for him प्राणायामः is unique-

प्राणादिस्थूलभावं तु त्यक्त्वा सूक्ष्ममथान्तरम्।

सूक्ष्मातीतं तु परमं स्पन्दनं लभ्यते यतः॥
प्राणायामः स निर्दिष्टो यस्मात् न च्यवते पुनः।

After leaving the gross movements of breathing in and breathing out his प्राण becomes very subtle and he is unable to observe the movement. Following this state सूक्ष्मातीत (which is beyond this subtle state) state comes into existence. After attaining this state he does not lose consciousness of awakeness he feels internal throbbing by it this प्राणायाम is described in this way in Lakṣmi kaulārnava Tantra. After प्राणायाम Yogi has to practice प्रत्याहार which is also unique:-

शब्दादिगुणवृत्तिर्या चेतसा ह्यनुभूयते।
त्यक्त्वा तां परमं धाम प्रविशेत् तत् स्वचेतसा
प्रत्याहार इति प्रोक्तो भवपाशनिकृन्तनः॥

After establishing in this kind of प्राणायाम he hears or feels tremendous divine sound in mind, there is apprehension of falling again in worldly attachment but one must hold one's consciousness there firmly not to be lured by these sounds, one should remain unattentive to these sounds because these sounds may harm him afterwards when one gets entry in supreme state of consciousness (परमंधाम) This state is called प्रत्याहार। भवपाशनिकृन्तनः- this cuts down into pieces all the bondages of ignorance. After प्रत्याहार what is ध्यान for such a Yogi

धीगुणान् समतिक्रम्य निर्ध्येयं परमं विभुम्।
ध्यात्वा ध्येयं स्वसंवेद्यं ध्यानं तत् च विदुर्बुधाः॥

When a yogi goes beyond the existence of these sounds and remains fully with awareness of self one gets afterwords the supreme state of ecstacy which is not explainable what kind of joy or what kind of happiness he experiences and that which is experienced by him is known to his own self. This in real sense is called ध्यान by experienced seekers.

After ध्यान what is धारणा for such a yogi-

धारणा परमात्मत्वं धार्यते येन सर्वदा।
धारणा सा विनिर्दिष्टा भवपाश निवारिणी॥

धारणा in real sense is that when a yogi holds the consciousness of

Lord Śiva in continuity eternally without any break. This type of धारणा liberates him from all the bondages of ignorance. After धारणा what is समाधि for such a Yogi:-

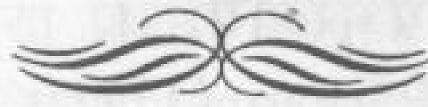
स्वपरस्थेषु भूतेषु जगत्यस्मिन्समानधीः।
शिवोऽहमद्वितीयोऽहं समाधिः स परः स्मृतः॥

when the state of universal consciousness of Lord Śiva is experienced by such a yogi not in his internal state of consciousness of self but also in the very active life of the universe, this is real समाधि for him.

इति श्रीमन्मृत्युजित भट्टारक निरूपितनीत्याधारणादिभिरपि पर-तत्त्व समावेश एव भवति न तु मितसिद्धिः॥ ६॥

So in नेत्रतन्त्र it is explained as this धारणा, ध्यान, समाधि etc. also direct you towards the state of universal consciousness of Lord Śiva and that kind of धारणा which results in experincing the Yogic powers will mislead you.

*(to be continued)*



# Concept of fullness-
# Pūrṇata in Kashmir Śaivism

– *Prof. Makhan Lal Kukiloo*

*(Continued from previous issue)*

That fullness - the ultimate reality is the prolific cause and the essence and identity of everthything. It abounds in bliss and consciousness and is endowed with sovereignty of will, omniscence and omnipotence. It is every thing and yet beyond everything. It is both immanent (विश्वमय) and transcendent (विश्वोत्तीर्ण). Time form and space do not limit it because fullness is above all. It is not bound by any physical laws. This freedom from all restrictions is Svatanratā of fullness. It gives life and existence to everything in this universe. It is pure consciousness. About (परिपूर्णता) in 11th Patala of Svacchanda Tantra, it is said :

मलकर्मकलाद्यैस्तु निर्मुक्तश्च यदा प्रिये।
सर्वाध्वसमतीतश्च मायामोहोज्झितश्चयः॥
निर्मलत्वं यदा याति पदं परममव्ययम्।
परिपूर्ण तदा देवि प्रोच्यते प्रभुरव्ययः ॥

Lord Śiva addresses to Pārvati, O Dear ! one who is free from three types of impurities, who is beyond all *Adhvā* (pathways), who is devoid of Māyā and attachment and thus after attaining complete purity he achieves the supreme peace which is everlasting, ODevi ! that everlasting omnipotent lord is called by the name of *'Paripūrṇa-parmātmā'*.

Defining the importance of fullness-Pūrṇatā, it is quoted by *Bhaṭṭa vāmadeva* in his book namely Janaṇa marana vicāra, as under :-

त्यजेत्क्षेत्रं तथा तीर्थं यावत् ब्रह्मणि नो विशेत्।
तद्विदित्वा श्वपाकोऽपि मत्समो नात्र संशयः॥

Place of pilgrimage or auspicious fields have importance till you have not achieved fullness. After knowing fullness even a mean fellow gets entry into God-consciousness. This very fact has been authenticated by śeṣamuni in Parmārthsāra :-

तीथे श्वपच गृहे वा नष्ट स्मृतिरपि परित्यजन्देहं
ज्ञान समकालमुक्तः कैवल्यं याति हतशोकः॥

An aspirant after getting entery in fullness state, becomes liberated even if he abondons his body at a place of pilgrimage or in a sweeper's house and whether he may have forgotten previous remembrance, he becomes free of all sufferings.

In our scriptures it is said :-

"प्रदेशोऽपि ब्रह्मणः सार्वरूप्यं अनतिक्रान्तश्च अविकल्प्यश्च"

*Pradeśo pi brahmaṇḥ sārvarūpyaṃ anatikrantásca avikalpyaśca*

Even a little space in the world is the form of fullness of the creator, insurmountable and unimaginable. In Śaiva texts also it is said :-

"एकैकत्र च तत्त्वेऽपि षट्त्रिंशत्तत्त्व रूपता"

*Ekākatra ca tattve pi ṣattrimśattattva rūpatta*

In the process of thirty six elements namely from Śiva tattva to Prithivī-earth-tattva, all elements exist in each tattva. So it becomes evident that every particle of this world is the form of fullness-Pūrṇatā.

In Ācrya Abhīnavagupta's Paramārthsārh, while explaining verse no-V, the commentator Yogarāja says :-

एष एव च भगवान् शिवः स्वातन्त्र्यात् भोक्तृ भोग्य लक्षणं प्रमातृप्रमेय युगलकं क्रीडनकमिव समुत्थापयति, यदपेक्षया अयं भेदप्रधानो व्यवहारः। तस्मात् ! एतदेव परमेश्वरस्य स्वातन्त्र्यनिरतिशयं यत् पूर्णस्वरूपता परित्यागेन स्वात्मनि प्रस्फुरन् सः चिदानन्दैक घनः शिव एव।

Lord Śiva by his unimpeded free will kicks like a toy this twin formed subjective objective world and causes this differentiated feeling every where. But it is his supremacy of unimpeeded free will that he does not discard his fullness and keeping fullness in hand. He jumps in अपूर्णता (Apūrṇatā) In Iśvar Pratyabhijña vimarśini Abhinava Gupta strengthens the above said statement by explaining that because of his fullness this whole variegated universe is shinning within him vividly just a reflection of city is vivid in a mirror.

The word 'ब्रह्म' is fully indicator of the 'fullness' because ब्रह्म means 'सर्व ब्रहत्त्वात् बृंहितात् वा ब्रह्म' because he is full everything is within him. He is full so he is named as (Paraṃ). Bhartṛharī also says

"यदादौ च यदन्ते च यन्मध्ये तस्य सत्यता"

*Yadādau ca yadante ca yanmadhye tasya satyatā*

In the beginning at the end in the centre also he is full that is his truthfullness.

Ācārta Utpaladeva of Kashmir was grand master of Abhinavagupta. In his unparalleled treatise of devotional songs namely "Śivas to travali"- garland of songs of Śiva, he says, "whatever is not let that be nothing to me, whatever is let that be every thing to me. In this way may it be that you be found and worshiped by me in all states." Those who long for you they discover you in every object because you are full. So while beholding different objects, I clearly see you and you alone. He who without hesitation views that world only as your form, is eternally joyful. Why then the fear. Because -

एककोऽहमिति संसृतौ जनस्त्रास साहसरसेन खिद्यते।
एककोऽहमिति कोऽपरोऽस्ति मे इत्थमस्मि गतभी र्व्यवस्थितः॥

*"Abhinavagupta"*

*Ekako hamiti samsirtau janastrāsa sāhasarasena khidyte*
*Ekako hamītī ko paro sti me itthamasmi gatabhīryavasthitḥ*

I am alone in this world or in my home, this fear haunts one every time and he feels dejected. But I am "Aham", non else is other than him this resolve makes one fearless because he is glorfied with his fullness.

हरिरिव जगत् जगत् एव हरिः हरितो जगतो नहि भिन्नमणुः।
इति यस्य मतिः परमार्थगतिः स नरो भवसागरमुद्धरति॥

Hariḥ (Lord) is universe, universe is Hariḥ, so how can an individual be other than Harih. One who has developed this sort of thinking, he alone attains the state of super consciousness and this type of individual crosses this fearful worldly ocean without any difficulty. This statement also strengthens our view that this universe is nothing but the vivid form of fullness. Knower of this truth of fullness is the real knower of *Śiva Tattva*. For him discarding his body at poius Himalaya or at the main source place of Gangā, or at most pious place varānasi or at Kuruksetra or at Prayagaraja where three trubitaries meet together at Allahabad (U.P.) or at the house of a candala, is one and the same thing. As is said in *Śri Nirvāṇa yogattara* :-

हिमवति गंगाद्वारे वाराणस्यां कुरौ प्रयागे वा।
वेश्मनि चण्डालादेः शिव तत्त्वविदां समं मरणम्॥

Śaivopniṣada the highest Ágama of Kashmir Śaivism affirms this view that fullness is ultimate

यत्र यत्र मनोयाति बाह्ये वाभ्यन्तरे प्रिये।

तत्र तत्र शिवावस्था व्यापकत्वात् क्वयास्यति।।

*Yatra Yatra Mano Yātbāhye va bhyantare prīye*

*Tatra tatra śivāvasthā vyāpakatvāt kva yāsyati*

Lord Śiva addresses Pārvati, O dearone ! externally or internally where where our mind goes, there-there is the state of fullness. So by going here and there let it go, our mind at last will rest at fullness. By entering in fullness state organs of spiritual seeker get filled with gleaming joy. They bloom with the grace of the whole wheel of energies. They come fully under the influence of the inner self, which is unique intense, always fresh and uncommon to all. With this limitless state of fullness an aspirant feels more and more astonishment and becomes one with supreme God-consciousness the seat of repose. In this state of fullness all distinctions and diversities are absent, being and non being are identified, time is mergsed in eternity, individuality in universality and finitule in infinity. In fact fullness is the begining and the end of this phenomenal universe. It is termed as 'बोधाब्धि' (Bodhābdhi) the sea of supreme knowledge. In Pratyabhijna the doctrine of recognition, it is said that knowing this that this whole universe is my glory, one gets established in the state of fullness even though the predominance of various thoughts and ideations exist side by side.

In IInd Áhnīka of Tantraloka fullness has been described as follows:-

The Principle of highest self revelation is synonym of fullness. It is neither the hightst energy namely Śakti because it is not dependent, nor it is the highest Lord, because of his being of independent nature. It is full-complete in all respects. Full is always ful. This fullness is beyond the related cause and effects of the universe. It is not contemptable, because there is no contemplator, vice-versa. It is unworshipable as there is no worshipper-vice verse. It is neither मन्त्र nor the recitor of मन्त्र (Mantra) nor the deity for whom Mantra is recited. It is neither initiator nor initiation nor initiated. This type of state is called as fullness and that fullness is महेश्वरः (Maheśvaraḥ) the highest Lord full of all glories.

In fact whatever is the root cause of duality that cannot exist in fullness. Ágama also collaborates with this very idea. It is said in Śri Bharga Śikhā:-

न सन्नचासत्सदसन्न च तन्नोभयोज्झितम्।

दुर्विज्ञेया हि सावस्था किमप्येतदनुत्तरम्।।

अयमित्यवभासो हि यो भावोऽवच्छिदात्मकः।
स एव घटवत् लोके संस्तथा नैष भैरवः।।

In this world whatever we perceive we call it by the name of Ayaṃ – (अयं) this or that, may be this घट (Ghaṭaḥ-pot) or this पटः (Pataḥ - cloth) etc. but the highest self consciousness which is named fullness is neither sata सत् nor असत्। Nor existant or non existant nor the both nor without the mention of both सत् and असत्। This sort of state is inconceivable. If this supreme fullness is neither sata - सत् nor Asata असत् then it should be beyond that. To remove this doubt the author Abhinavagupta says that this fullness shines profusely not in appearance alone but in non- appearance also. This is its peculiarity so we are in a fix. Definition can not define it easily, because it is 'Anuttara'. As is said -

ततोऽपि परमं ज्ञानमुपायादिविवर्जितम्।
आनन्दशक्ति विश्रान्तमनुत्तरमिहोच्यते।।

*Tato'pi Paramaṁ jñāmupāyādi vivarjıtaṁ*
*Ānanda śakti viśrāntaṁ anuttaraṁ ihocyate*

Anuttara (अनुत्तर) is that supreme state which is attainable without any means i.e. we have to do nothing to achieve it and it is rested in the energy of bliss. Whosoever has tasted the taste of this state even in negligible way for him all types of meditation such as Samādhī yoga observing fasts, reciting Mantras, mudras bodly signs or gestures of limbs Japa etc. appear as venomous i.e. distasteful and harmful.

अयं रसो येन मनागवाप्तः स्वतन्त्र चेष्टानिरतस्य तस्य।
समाधियोग व्रतमन्त्र मुद्रा जपादि चर्या विषवत् विभाति।।

*Ayaṁ raso yena manāgavāptaḥ svatantra ceṣtā nīratasya tasya*
*Samādhī yoga vrata mantra mudrā japādi caryā vīsavata vibhāti*

In fact every atom of the emanation is full, because in every particle the way of ascending and decending is completely open and every atom has the centre of up and down. Thus the fullness is pervading in every particle or atom. Even in a rock, in plants, in beasts in human beings, in Devas upto Iśvara element, this 'I' is found secretly in a seed form. It is said "Yath bramāṇde tathā pīṇde– यथा ब्रह्माण्डे तथा पिण्डे' means just his fullness is evident in this whole cosmos similarly in each and every physical form also. It is why God is named as omnipotent, omniscient and omnipresent,

because from the cosmos to the minutest atom everything is covered by his fullness.

As per Hindu's view point there are eightyfour lacs of species in this universe. An individual who by dint of good actions of his births, takes the form of human being, carries the impressions of every birth (Janama) along with. Every impression of every birth is the centre of fullness in its own way. A man can go downwards and assume numberless forms and can go upwards also to become near to God. This is the conception of his "Bahusyaṁ बहुस्याम to be present in maniforld forms. Now please say when we express 'Eko' ahaṁ- एकोहं I am all alone- we take his fullness for granted then why Bahusyāṁ - बहुस्याम् form be construed as incomplete or Apūrṇa _ अपूर्ण, because that is the inseparable part of his first half 'Eko' aham - एकोऽहम् ।

In the Bhagavadgītā the most respected gospel of Hindu religion, Lord Krișṅa openly expresses that "Vāsudevaḥ sarvamīti" means what ever is found in this world, may be satient or insatient, animate or inanimate that is the form of Vāsudeva which is synonym of fullness. Besides in 10th chapter of this very holy book vāsudeva exhibts his fullness in all beings and non-beings to Arjuna and at the end emphasises that "Na tadastī vinā yatsyāt mayā नतदस्ति विना यत्स्यात् मया or मयि प्रोतं जगत्सर्वं सूत्रे मणिगणा इव- Mayiprotaṁ jagata sarvaṁ sutre maṇigaṇā iva i.e. there is nothing in this world which can exist without my fullness or this whole universe is pervading in me just like beeds of rosary are filled one after another in the thread. Again in 11th chapter at the request of Arjuna Vāsudeva manifests his Vīrata rūpa. Which is nothing but vivid form of fullness. In 11th skandha स्कन्ध-chapter) of "Śrimada bhāgavata vāsudeva explains in detail the secret of fullness to his friend turned Jñānī uddhava (उद्धवजी).

In yajurveda Rudra's glory is extolled in the following way :-

यो रुद्रो अग्नौ योऽप्सु य ओषधीषु
यो वनस्पतिषु। यो रुद्रो विश्वा भुवनानि आ विवेश
तस्मै रुद्राय नमोऽस्तु देवा:।।

O Gods ! pay obescience to that Rudra (one of the form of Lord Śiva) who is ever present in fire in water, in herbs, in plants and who has pervaded all 118 Bhubvanas (worlds) with his fullness.

Rigveda's vāksūkta of 10th Mandala goes upto this extent by warning that those who do not accept lord's fullness will have to face his wrath.

In 'Iśopaniṣada' also it is explained that :-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचित् जगत्यां जगत्''

Whatever is found in this world whether moving or stationery, is covered by the fullness of Lord.

Vedāntic scholors also confirm fullness state by saying that:-

तमेव भान्तं अनुभाति सर्वं
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति।

When that effulgent light of fullness shines, all becomes luminous alongwith his effulgence.

Abhinavagupta the expounder, Utpaldeva the systemizer and Somananda the originater of doctrine of recognation (Pratybhijnā) explains the fullness in his only treatise Śivadrsti as under:-

ज्ञाते शिवत्वे सर्वस्थो प्रतिपत्त्या दृढात्मना
करणेन नास्ति कृत्यं क्वापि भावनयापि सा। इत्यादि।

If fullness, residing in every one, is made known form or by determination or by certain proofs, or by studying śāstras or by master's explanation, then other means become redundent. Just like the correctness of gold if certified once all other means of verification cease to function. As we have already explaind that that very fullness is euologised as the highest state of Anuttara. Anuttara is that self consciousness which is all pervading, eternal and self evident. It is never less nor more in its form. More ever there is no agency superior to it or separate from it. Whatever we find in this world, that is the form of fullness - Anuttara. Therefore this fullness or pūrṇatva is present at every time, pervasive in everything and visible to all. It is one's hearty pulsation which is concealed in seeker's inner most part. It is vibrating energy to which the world process owes its existence. It is the highest reality. It is the mass of consciousness and bliss. It is sovereign in emanation, mentanance and absorption. It does not depend upon any extrannous condition. Pūrṇatva is synonym of स्वातन्त्र्य also which means the absolute, spontaneous free will of the divine consciousness. It is not conditioned by any thing outside oneself. This fullness is that state where pure consciousness is like an ocean without any ruffle what so ever and is full of bliss. It is a

state in which the entire universe appears as his self. This active force of highest reality is all independent. Tantras also explain that Purṇatva is the final reality in both transcendental as well as immanent state.

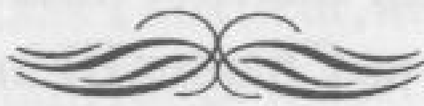
सर्वातीतं परं तत्त्वं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम्।

The Svacchanda Tantrā describes the six phases of śūnyatā as the transcendental being Anuttar or Pūrṇatva, or viśvottirṇa the highest and last reality which is in reality अशून्य– A śnya (as is said Aśūnyaṁ śūnyaṁ iti uktaṁ अशून्यं शून्यं इति उक्तम् i.e. non voidity or emptiness in the ordinary sense of the term is but a positive being (सत्तामात्र) from which emorges infinite universes and realisable in it. It is this śūnya which contains in itself everything and which materilises itself in the concrete form of this physical and subtle universe. As is said in Svacchanda:-

तत्र तत्र परं शून्यं सर्वं व्याप्य व्यवस्थितम्।
तदेव भवति स्थूलं स्थूलोपाधिवशात् प्रिये।।

Thus this Pūrṇatva is free from all limiting conditions, absolutly free from an objective context i.e. anything to depend upon like the body, the mind etc. It is चित् क्रिया-चित् कर्तृता i.e. absolute liberty and autonomy of consciousness.

*This paper was read at the Seminar Organised by ABESHEKTA NAND SOCIETY at Varakasi under the Chairmanship of his holiness Dalai Lama.*



# Rendezvous at varanasi

*– By Sh. Moti Lal Qazi*

Varanasi, 17th Feb. to 1st of March, 2003.

Varanasi rings in an ambience of its own - an ambience, which is, rich in cultural diversity, spiritual learning and tradition-particularly in the realm of "Shaivism" - its famous temples namely, Kashi Vishwanath, Kidareshwar, and others, its ghats along the banks of the eternal Ganga and to some, metaphorically, entire Varanasi is the Body of Lord Shiva.

For the devotees and disciples of "The Guru Dev", Varanasi was the venue of a mile stone, as it were, in the Masters' Revelation and biography. It was here, some years ago, that Swami ji revealed to the world for the first time, in quintessence some aspects of "Kundalini" and the Yogic practices aimed at its awakening. The master's address to the distinguished delegates and scholars, who, had gathered for the International Conference, appropos "Kundalini Rehsaya", was direct and face to face. The delegates were asked to listen in Attentive, unflagging Awareness. The event was echoed by a few scholars during my visit and rendezvous in the Workshop regarding Text and practice of Kashmir Saivism.

For those interested in a comprehensive biography of The Guru Dev, the above pioneering event, like the event, amongst others, of Masters pioneering Rendering into English of Vijana Bhairva to Paul Reps of America and its Publication for the first time in the American Magazine named Gentry, and thereafter as Chapter III in 'Zen Bones and Zen Flesh' by Paul Reps and another under the caption 'Centering', has to be recorded comprehensively in depth and detail. In my humble view, the Biography of Master, has to present a gestalt portrayal of the Master.

In response to an invitation lfrom Prof. Baumer convener of A Workshop on Kashmir Saivism: Text and Practice held at Varanasi during 17th February to 1st March, 2003, I participated in the programme from 23rd of February, to 1st of March, 2003. The Highlights of the programme were (a) Yogic Asaṇas under the guidance of a professor who explained the linkages between a particular Asna and the Bio Psychic Organization of a

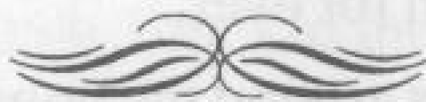
practitioner; (b) this was followed by one hour meditation, which started with an 'invocative recitation of Om' - reminiscent of what the Master would ask us to echo from the peaks of foot hills of Ishbar; (c) this was followed in the after noon by lectures and discourses of Pt. Chakraborty, Prof. Tirpathi and prof. Kamlesh Jha.

The above programmes were interspersed by visits to various sites and Musical recitals - for which also Varanasi is a venue from time to time. We also paid a visit to the peace and solitude at the Ashram of T. Krishnamurthy. On 19th of February, 2003, which, I missed, a Video of Swami Lakshman Joo was shown at Hotel Ganga view Assis Ghat and 21st February, 2003 the participant of the workshop had the benefit of listening to the lecture on "Shiva, the Essence of Consciousness" by professor Baiumer. The highlight of the entire programme was the Special function which was co sponsored by the Department for Center for Spiritualism and Human Enrichment undr the auspices of School of Management Studies of Banaras University and Trika Inter Religious Trust.

Thakur Jai Dev Singh Award for outstanding contribution in the field of Kashmir Saivism has been instituted at the above centre and significantly the first recipient of the award was Pt. H.N. Chakravarty. I had the good fortune of listening to some of his renderings and interpretations which impressed me as being highly intuitive and comprehending.

The participants in the workshop were from different countries including Austria and other parts of India from whom a token fee and contribution was taken by the Organizers of the programme.

Ishwar Ashram Trust could also usher in programmes and workshops of the above type.



# Kailash Mansarovar Yatra

**The Pilgrim's Progress**

*– By Rajinder Raina*

"It was a miracle of rare device, A sunny dome with caves of ice"

–Sumuel Taylor Coleridge 'Kubla-Khan'

The Kailash Mansarovar Yatra is on, The first batch is scheduled to leave Delhi beginning June. About 15 to 16 batches comprising of about 25 -30 people in each batch would be chosen. A few who would accomplish this yatra this year the duration of the yatra, if everything runs smoothly, is 27 days. The essence of the Yatra is the Parikrama of Kailash the abode of Lord Shiva and Mansarovar. The Parikrama ofMansarovar appx. 110 kms (out of which 80 kms are accompalished on foot or ponies) takes two days and that ofHoly Kailash is 65 km which is performed in three days. The height of the Kailash peak is 22,028 ft. Parikrama. Kailash or "Ice Mountain, is the abode of Shiva and Celestials. Tibetans call it Gang-ri or "ice mountain" which is Ri-gyal or king of mountains. The Kailash range, runs through the midwest of Western Tibet, along the right bank of the Indus. Situated in the lap of Himalayan Mountains, Mansarovar at an altitude of about 15000ft. is a lake of purity and pristinity with a depth of about 300 ft. It encompasses an area of about 200 squire miles. It is laden with infinite moods which are reflected in its waters. It changes its colours at amazing speed -Grey, blue, dark green of different hues and shades. During moon-lit night, the reflection of snow capped mountains and millions of stars in pin-drop silence transports one to an unseen and unheard ofWorld. A dip in its waters is soul- satisfying.

As Shelly says, "A thing of beauty is a joy forever, its loveliness always increases. It never passes into nothingness". The beauty and grandeur of Kailash Mansarovar linger on for ever.

From the lofty mountains around the holy lake of Mansarovar, spring four celebrated rivers, the Indus, the Satluj, the Gagra and the Brahamputra. According to Hindu mythology, the classical Ganges is fabled to flow from a cow's mouth, the Indus from lion's mouth, (singge-Kha-baub), the Sutluj from an elephant's mouth, (Langchen-Kha-Bub), the Gagra, from peacock's

mouth and the Brahamputra from the holy horse's mouth Ta-chhog-khabab. Kailash Mansarovar Yatra is organised by the Ministry of External Affairs and people desirous of undertaking the Yatra fill in their forms in the month of March. The selected Yatris are notified by the MEA alongwith an elaborate instruction manual.

The Kailash Mansarovar Yatra is a long, ardous journey, physically and mentally challenging. People undertaking this trek should be medically fit and in right frame of mind. After going through initial medical tests and being declared medically fit the Yatra starts from Delhi. In Delhi, the Yatri's of each batch get together and are briefed by M.E.A. and the Laision officers. They form committees to ensure smooth yatra. The most important Committee is the Food Committee. During the entire Parikrama of Kailash and Mansarovar, the Chinese side only provides the lodging and a stove at the night-halts. The food is managed by the Yatris themselves. The Indian part of the Yatra is looked after by Kumavo Mandal Vikas Nigam. They provide adequate accommodation, bedding and good hot food at every halt. People from KMN are very courteous and make you as comfortable as possible. At every halting point on the Indian side, there is the facility of telephone.

Fancy food is best to be avoided. Rice, potatoes, pickles, soup packets should be carried in sufficient quantities as common food. The food is always supplemented by rich snacks-cashew nuts, choclates, almonds, sweets etc. carried by each Yatri in abundance and shared enroute. In fact, food is never a problem.

The Yatra for first three days is in a bus, the first night halt is at Kathgodam, the second is at Bhageshwar and the third at Dharchula.

At Darachula, Yatris cross over to Nepal to do last minute purchases. It is here that one selects his poter and pony, if required, for onward trek on the Indian side upto Lipulekh Top. On the fourth day, the bus drops the Yatris at Mangti about 30 km from Darchula. Then the trekking starts. The trek from Mangti to Gala, about 5 kms is gradual and through lush green hills and numerous waterfalls. Next day early in the morning the 21 km -trek to Budhi starts. The initial descent of about 1000- ft is abrupt and very hard on knees. Enroute yatris cross Malpa, the scene of tragic catastrophe in 1998

when the entire batch alongwith porters and local people perished as the mountain crumbled at night. Till 1998, Malpa used to be a halting point for night. From Malpa to Budhi, the climb is gradual. It is an area of landslides and shooting stones. The barracks in Budhi where Yatris are lodged, are situated at a very scenic place surrounded by mountains. After Night-halt, next day early in the morning, Yatris proceed towards Gunji, about 15 km from Budhi. The initial climb is steep, almost like going up Pisu-Top while going to the Holy Cave of Amarnath. The rest of the stretch is plain along the river Kali. At Gunji, ITBP takes charge of yatris. They are given a medical check-up and if any yatri is found unfit, he is not allowed to proceed further. The 9-km trek from Gunji to Kalapani is through dense pine-trees and meadows. The altitude is still in the range of 11,000 to 12,000 ft. The movement of Yatris is regulated by ITBP and trek takes place in a single file. Yatris pack their extra clothing and those things not required for onward journey at Kalapani. In ftont of the camp at Kalapani is a huge cave believed to have been used by Mahrishi Ved Vyas for meditation Next morning begins the 9 km trek to Navidang, the last stop on Indian side. The climb is gradual. As the altitude increases so does the discomfiture. On the way one sees Om Parvat, the formation of snow on the mountain top in the symbol of Om. There are bewitching scenic spots enroute. At Navidang the vegetation is thin, the mountains are steep and stark. Here, Yatris repack for onward strenous climb to Lipulekh top (17,500 ft). The ITBP Commander and ITBP doctor brief yatris at night. After hot cup of milk/ tea, the trek begins at 1 O'Clock in the night. Heavily clad yatris, on foot are asked tomove-first foflowed by Yatris on horses. In pitch , darkness, Yatris inch upwards using their torches. The lung-bursting climb ? takes roughly five to six hours. It is not uncommon to have very strong winds accompanied by rain and snow fall. This is one of the most tiring stretches on the entire Kailash Mansarovar route. Lipulekh top is the last boundary of India. Here the two groups of Yatris are exchanged, the group having completed Yatra crosses over ftom China into the Indian side and the group ftom Indian side crosses over into China. From Lipulekh, there is a descent of about 3000 ft., about 6 kms. The transport is arranged by the Chinese and after the yatris arrive, they move for onwards journey to Taklakot. Lipulekh climb is tiring. Exhaustion is writ large on Yatris, high altitude takes its toll. Bus ride to

Taklakot is on unlaid track through streams and ditches. It is a vast barren land, local Tibetans can be seen tending to their yaks.

Taklakot, at an altitutde of about 14,000 ft, is an important city in Tibet. Here Yatris are lodged in guest house with adequate bedding, food and hot drinking water. Here the halt is for two days for completing formalities. Each Yatri pays 500 dollars to the Chinese officials and exchanges 150 dollars for Y ansto take care of extra costs in hiring of porters, horses and yaks.

At Taklakat, the batch is divided into two groups -'A' and 'B'. While 'A' group makes the Parikrama of Kailash, 'B' batch performs Mansarovar Parikrama. The selection is the perogative of the Liaison Officer. Then the two groups swap. The food packets are divided and so is the Havan Samgri amongst the two batches. Each group hires cooks. Yatris also book porters, Yaks and horses as per their requirement. Here Yatris do some shopping. A Chinese Guide who can converse in Hindi and English accompanies each group.

After two -days halt at Taklakat, Yatris, both A & B group move in a bus or a truck early in the morning for Zaide, 113 kms away. The journey is hard on bones through rough unlaid mountain path. Every bone and muscle aches. But the nature -the landscape of rugged, barren wind-swept, and sun beaten mountains is awe -inspiring.

The most wonderous part of the journey is when the bus comes out of a mountain curve and you sight Holy Kailash Mountain reflected in sprinkling waters of Raksas Tal. Clear, azure sky, reflecting Mount Kailash and Gurlamantha mountain range is surreal. Yatris are dumfounded by the majesty of the site. Face to face with Kailash, even from a distance is humbling experience.

At Zaide, luggage of group 'A' is separated for onward journey to Tarchen for Kailash Parikrama while Group B proceeds for Hore for Mansarovar Parikrama.

At Tarchen, Gurlamantha range of mountains and vastness of Barkha Plains on one side, and Kailash on the other, transports one to an unbelievable world of beauty and serenity. The sunset reflecting on mount Kailash and Gurlamantha presents a unique spectacle. Tibetans have set up a few shops

here and a horde of Tibetan ladies swarm with cheap goods, beads etc. Yatris who want to do circumblation on foot leave early while yatris on Yaks and ponies start a little late. The Guide is the sole communication link with yak owners. The trek to Deraphuk is exhausting. Some Yatris feel breathless and insomanic. Rest and eating, even though one does not feel, are very vital.

One of the major ordeals of the Parikrama is that after trekking for the whole day, one has to begin the day very early, in pitch dark and sub zero temperatures. But waking up so early in the morning needs no special efforts. Majority of the Yatris even after such exhaustion are unable to sleep due to lack of oxygen at Dera phuk. High altitude affects the nature's gentle nurse. Early morning sunrays bathe the dove of Kailash and it is transformed, as if by magic wand, to pure golden colour in a matter of seconds. The yatris are ready for the final assault on Dolma Pass, the highest point (19500 ft) way trek towards Zongzerbu, the next halting point.

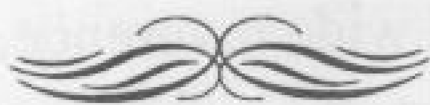
It is the ultimate test of will power. Climbing Dalma Pas is a lung bursting exercise. Even yatris on Yaks pant for breath. Carrying even a water bottle or a camera is an effort. After spending some time on the Dalma Pass, the Yatris head towards Zorgzerbu. About 500 ft down from Dalma is the Gauri Kund, the small milky lake about 3 km in circumference and is mostly frozen for most part of the year .Only a few yatris brave to go down to the Kund to bring back its water .

After the night halt at Zorgzerbu, the trek to Tarchen is relatively easy and completed in three to four hours. This completes the Kailash Parikrama. A few yatris, after arrival at Tarchen, head for Ashtapadha, the Easter face of Kailash. All around nature in its supreme glory is soothing. Rising in majestic glory from the granite, the Mount Kailash, covered with snow sends spiritual vibes. The limbs are tired, back hurts, one is drained of strength, each step is an effort. But as the eyes wonder across the barren vastness of Barkha maidan and towards Kailash Parvat, one feels a sense of profound contentment. "There was nowhere on earth where I would have preferred to be". No wonder Rishis and Munis from the yore have sung its praises. The majestic mountain range of Gurlamanha evokes and inspires an unfathomed passion for nature. The raw, rugged and masculine beauty

of mountains without a blade of grass rises in jagged splendour the Mount Kailash. The majestic beauty of Mount Kailash from every angle during Parikrama manifests in plain reverence.

After night's rest at Tarchen, the truck picks group 'A' and drops the Yatris at Hore. At Hore, the Yatris make arrangements for horses and porters. Early next morning by around 3.30 a.m. yatris are up for the longest trek, 45 kms to Qugu. The Parikrama of Mansarovar is knee jerking, though the Parikrama is on level ground. But the rarified air, bright sunshine and harsh winds make it difficult. To add to the exhaustion and dehydration, is the non- existence of any shade. But a look at the hues, the shades and the colours of Mansarovar is a celestial sight. At Qugu, the rest-house overlooks Mansarovar. In the evening the setting sun sets the mountain range and the Mansarovar aflame.

After a well deserved rest at Qugu, the group readies itself for 35 km trek to Zaide. The trek is completed in about seven hours time. This is the culmination of the Parikrama. It is a moment of Catharsis, purgation of emotions. As yatris embrace each other, tears flow freely. Yatris bathe and perform Hawan and collect water in canes and seal it for onward journey back home. Next day the group B after completing Parikrama of Kailash rejoins at Zaide. In the morning the bus is ready for journey back to Taklakot. After two days rest at Taklakot including a trip to Khojarnath temple, the yatris are driven to the base ofLipulekh. Chinese provide horses and yatris in two hours time are atop Lipa lekh and back in India. The onward journey on the Indian side is mostly downhill. It takes further 6 days to reach Delhi.



## Saint Philosopher

*– By Sh. Arvind Shah*

The greatest spiritual philosophy to withstand all reason,
comes from the Himalya the Shiva's abode in Kashmir Shivasim.
Swami Lakshman Joo the great Saint Philosopher,
Crystal clear to spell meaning to every script and metaphor.
Swami Ji, has been the greatest exponent of Shiva philosophy recently,
in modern times, to influence, stimulate and corelate life in practicability.

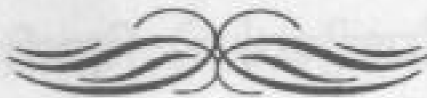
The possessions of scripts were so deep, clear and intense,
that world wide scholars came to learn about its substance
When he spoke to explain, the Shiva Treasure to unfold,
even the birds, leaves and air would hold to listen what is told.
In his association it would be, to feel and see Shiva present,
straight and clear in every material and matter quite evident.
A disciplinarian filled with ocean of love,
to teach, life is to be lived and how?

## The Hero of India

*– By Shri Arvind Shah*

The Hero of India by thought and deed;
whom no body could withstand but bow in heed.
A magnetic person of world wide reverence,
to create lasting appreciative influence.
He cleared spurious spiritual myths and signs,
dismantled and erased all dividing lines.
He showed the path to unfold the fact with accurate instance
that there is only One common instinctive substance
To prove God is one, in every thing for one and all

as the cause of existence, what ever the call.
The desire; for the ultimate substance of existence,
or, for the overall cosmos as the single unit of existence,
is the road to spiritual experience,
and the revealing of the truth of God's existence.
God is not an imposition to be thrust upon,
it is always in possession to be recognized to come up and guide on.
Religions are facilitating factors for realization,
to enlighten the paths to is destination.
Religion is a system for human growth,
for spiritual attainments to come forth.
All religions are one, guiding paths to enlightenment,
Tread them not for squabble but for a virtue treatment.
Value every human face in reverence to every spiritual literature,
because "Man is Universe in Miniature".



श्रीपराशक्तिर्विजयते

# शाङ्करोपनिषद् के परिप्रेक्ष्य में "शैवचर्या एवं भैरवयाग"

— डॉ॰ जगीरसिंह

संस्कृत विभाग, जम्मू वि॰वि॰, जम्मू

राजानक क्षेमराज के अनुसार कभी भगवान् परमशिव ने द्वैतवासना से अधिग्रस्त प्रायः जीवलोक में रहस्य सम्प्रदाय' की रक्षार्थ व अनुग्रहयोग्यों में इसके प्रकाशन के लिये सिद्धवसुगुप्त को जो 'रहस्य' उपदेश दिया, वही शिवोपनिषत् = संग्रहरूप "शिवसूत्र" कहे जाते हैं। जैसे सभी श्रुति-स्मृति शास्त्रों का सार-सर्वस्वरूप गीता स्वयं भगवान् श्री कृष्ण के मुखारविन्द से प्रकट होने से पवित्र, सर्वोत्कृष्ट एवं प्रामाणिक है, उसी प्रकार से "शिवसूत्र" भी स्वयं परमशिव के मुख-कमल से निःसृत होने एवं सभी शैव-आगमों का सार तत्त्व या शिवत्व-प्राप्ति का बीज (कारण, उपाय) होने से सर्वथा ग्राह्य, अमूल्य पावन एवं प्रामाणिक हैं। जगत् की सृष्टि स्थिति एवं विश्रान्तिस्थल, सर्वमङ्गलधाम, शान्तिदायक एवं शिव विषयक रहस्य (गुह्य, सर्वथा दुर्लभ) ज्ञान प्रदान करने के हेतु होने से ही इन्हें आदर से "शाङ्करोपनिषद्" अभिहित किया गया है।

अभिनवगुप्त के अनुसार यह रहस्यज्ञान वेदों की भाँति नित्य, पवित्र, अनादि, संविदेकरूप एवं शाश्वत सत्य है, जो परावाक्रूप में एकरस रहते हुये विश्वमय अवस्था में क्रमशः पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरीरूप से विकसित स्थूल आभास रूप से शास्त्र अथवा आगम संज्ञित होता है।

इस शाङ्करोपनिषद में परमार्थ दशा (शिवता) संसारी अवस्था (जीवता), बन्धन के कारण अज्ञान (मल) एवं तत्समूह (पाँच कञ्चुक) प्रमाता-प्रमेय, पञ्च अवस्थायें, योगी-योग, मातृका, मित सिद्धियाँ परमार्थसम्पत् एवं मोक्षादि का सारगर्भित निरूपण मिलता है।

शैवागम एवं तन्त्रशास्त्रों में उपलब्ध - वामाचार, "दक्षिणाचार", "क्रम", "कौल", "मत" आदि विविध आचारों में से सर्वोत्तम "त्रिकाचार" पाया जाता है, जो अद्वैत विचारधारा का सर्वश्रेष्ठ स्रोत है। यद्यपि ये सभी आचार (साधना क्रम) अपने विशुद्धरूप में परिपूर्ण लक्ष्य की प्राप्ति कराने में सर्वथा समर्थ है और साधक अपनी रुचि अथवा योग्यता अनुसार जिस किसी भी आचार का अनुसरण कर परमार्थ अनुभव प्राप्त कर

सकता है, तथापि वामाचार, दक्षिणाचारादिमतों में 'जहाँ आचार-व्यवहार के नियम कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य की जटिलताओं से जटिल हैं, वहीं त्रिकाचार में ऐसा कोई विधि-निषेध अनिवार्य निर्धारित नहीं किया गया है। साधक अपनी सुविधा के अनुसार यथेष्ट अनुसरण कर सकता है। मुख्य लक्ष्य, ईश्वर-प्राप्ति, अविद्यानाश, आवागमन के चक्र से मुक्ति पाना है, जो विकल्प शुद्धि होने से सर्वथा सम्भव है। आचार्य उत्पलदेव ने भी ईश्वर - प्रत्यभिज्ञा' में ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया है:-

**विकल्प हानेनैकाग्रचात् क्रमेणेश्वरतापदम्**

वास्तव में, दर्शन शास्त्र की – सिद्धान्त और प्रयोग (साधना) - दो विधायें होती हैं। जिनमें क्रमशः "ज्ञान" और "विज्ञान" निहित होते हैं। दर्शन विशेष के तथ्यों को बुद्धि के स्तर पर सम्यक् समझ होना उसका ज्ञान," एवं साधना अथवा प्रक्रिया (प्रयोग) के माध्यम से उनको अनुभूत (हृदयङ्गम Realise) कर लेना ही उसका "विज्ञान" कहलाता है। इन दोनों विधाओं की समान आवश्यकता एवं महत्ता मानी जाती है। क्योंकि दर्शन विशेष के सिद्धान्तों के ज्ञान मात्र से, अनुभव के विना, उनकी यथार्थता का पूर्ण विश्वास सम्भव नहीं होता। अतः अनुभव के विना दृढ़ता और आनन्द की उपलब्धि सम्भव नहीं। इसी प्रकार, केवल तत्त्व साक्षात्कार से भी अकेले बात नहीं बनती। क्योंकि बुद्धि के स्तर पर न समझने से कभी भी भ्रम अथवा भ्रान्ति की आशङ्ङ्का हो सकती है। मोह का आवरण विवेक को भ्रमित कर सकता है। अतएव दोनों की अपनी-अपनी विशिष्ट महत्ता है। इसलिये शास्त्र ज्ञान के साथ-साथ उसमें निर्दिष्ट साधना का अभ्यास भी परमावश्यक होता है। आगमों में निर्दिष्ट आचारों में वैदिक आचार से शैव (द्वैत-द्वैताद्वैत), उससे वाम, पुनः उससे दक्षिण वा उससे कौल एवं उससे भी मत आचार को श्रेष्ठ बतलाया गया है, परन्तु इन सभी से त्रिकाचार को सर्वश्रेष्ठ माना गया है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार परम शिव विषयक दश द्वैत शास्त्रों अठारह द्वैताद्वैत और चौसठ अद्वैतपरक शास्त्रों का त्रिक शास्त्र सार है, जिसका सारतत्त्व मालिनीविजय है। टीकाकार जयरथ तन्त्रालोक विवेक में शास्त्र से उद्धृत करके स्पष्ट करते हैं कि ये सभी शास्त्र शिव से ही उद्भूत हुये हैं और सभी शिवधामरूपी फल प्रदान करते वाले हैं, किन्तु इनका नानात्व अनुग्राह्यों के आशय-भेद के कारण ही कल्पित है। इसी प्रकार द्वार-द्वारिभाव से उनका उपाय-उपेयभाव कथित होने से यथोक्त उत्कृष्टत्व कहना युक्तियुक्त है। इसलिये परमाद्वय उपदेश प्रतिपादन ही शास्त्र का शिवस्राव-लाभ एक फल निश्चित होता है। वही परमपद प्राप्ति में साक्षात् उपाय होने से उत्कृष्ट होता है। श्री मालिनी श्लोकवार्तिकादि में अभिनवगुप्त द्वारा यही भाव स्पष्ट

किया गया है। श्रीनिशाचारादि तन्त्रों में इसी आशय से कहा गया है कि वाममार्ग में अभिषिक्त होने पर भी दैशिक परतत्त्ववित् होता है और वह भैरव, कुल, कौल एवं त्रिक में भी संस्कार्य होता है। यह त्रिक शास्त्र सिद्धा-नामक-मालिनी भेद से त्रिविध है। इनमें 'सिद्धा' तन्त्र क्रिया प्रधान है, 'नामक' ज्ञान प्रधान है और 'मालिनी' ज्ञान-क्रिया उभयमय होने से त्रिकशासन का सार है और अभिनवगुप्त अनुसार इस में सब कुछ है, जो यहाँ (लोक में) पाया जाता है। कहा भी है -

**न तदस्तीह यन्न श्रीमालिनी विजयोत्तरे।**
**देवदेवेन निर्दिष्टं स्वशब्देनाथ लिंगतः॥**

काश्मीर अद्वैत शैव दर्शन के उपजीव्य शास्त्रों में 'शिवसूत्र' इसी सर्वश्रेष्ठ त्रिकाचार-धारा का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसमें बाह्य जप, पूजन, ध्यान, होमादि की अपेक्षा 'अन्तः याग'' (शुद्ध चिन्तन) पर अधिक बल दिया गया है। वास्तव में जीव शिवरूप ही है और शब्द अर्थ चिन्तन में ऐसी कोई अवस्था नहीं है, जो शिव नहीं है। क्योंकि वह शुद्धसंवित् है और वह संवेद्यमान होते हुये ही अपने विषय को प्रकट (उ्रासित करती है। यह संवेद्यमानता उस उस रूप में प्रकाशमानता ही होती है तथा प्रकाशमानत्व प्रकाश से अभिन्न ही होता है, न कि अन्य कुछ। अतः जीव शिवमय होने से सर्वमय है। परन्तु, वह अज्ञानवश इस रहस्य को समझता नहीं है। अतएव, वस्तुओं को स्वाभिन्न शिवरूप (प्रकाशरूप) समझने की अपेक्षा स्वभिन्न समझता है। यहीं से बन्धनरूप द्वैत का प्रारम्भ होता है, जिससे अशुद्ध विकल्प रूप संसार का उदय होता है एवं जीव शुभाशुभ कर्मवश संसृति चक्र में फंस जाता है। ''अन्तः यज्ञ'' शुद्ध विकल्प अथवा शुद्ध ज्ञान ही होता है जिससे संसार का हेतु अशुद्ध विकल्प क्षीण हो जाता है और पुनः अपनी भैरवरूपता की अनुभूति होने लगती है। इसीलिये शैव साधक इसे ''भैरव याग'' कहते है। इसमें परतत्त्व का सर्वत्र चिन्तन करने अथवा अशुद्ध विकल्परूप संसार का होम करने से जीव का शुद्ध चित्त ही इस प्रकार मननत्राण धर्म मन्त्र होता है। इस ज्ञान अथवा शाक्तयोग द्वारा चित्त पर विविध प्रकारों से यथार्थज्ञान अङ्कित अथवा आत्मस्वरूप अनुभूत हो सकता है, जिनमें से मुख्य याग, होम, जप, व्रत और योगादि है। यह शुद्ध विकल्प ही अन्तः यज्ञ, सत्तर्कभावना एवं भैरव याग कहा जाता है इसे आत्मपरमेश्वर लाभ के लिये साक्षात् उपाय माना गया है। ये भैरवयाग के प्रमुख प्रकार इस प्रकार शैवागम एवं शास्त्रों में निरूपित हैं–

याग– श्री विज्ञान भैरव अनुसार भगवान् शिव भगवती पार्वती को बतलाते हैं कि

साधक कीसामधि अथवा समावेश दशा में अनुभूयमान आनन्दजन्य सन्तुष्टि ही "याग" अथवा देवयजन कहा जाता है, क्योंकि इससे सभी प्रकार के पापों का नाश और परमार्थधर्म सर्वसम्पत की रक्षा होती है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार – 'सभी पदार्थों का परमेश्वर ही आधार है, उसके अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं"– ऐसे शुद्ध विकल्प को चित्त पर दृढ़ता से अङ्कित करने के लिये भावना द्वारा सभी भावों का परमेश्वर - अर्पण करना ही "याग" कहा जाता है।

होम – जहाँ शून्यातिशुन्य पदवी की भी कोई पृथक् सत्ता नहीं रहती, उस बोधभैरव रूप अग्नि में पञ्चभूत, इन्द्रिय, विषय, भुवन-तत्त्वादि संकल्प-विकल्पात्मक सकल जगत् की इन विभागों की कल्पना में प्रधान सहायक मन के साथ चितिस्रुवा द्वारा आहुति दे देना ही वास्तविक होम 'अथवा" हवि कहलाता है। सभी भाव परमेश्वर के तेज से ही बने हैं–ऐसे विचार को पूर्णरूप से रूढ़ बनाने के लिये भावना द्वारा परमेश्वर-संविद्रूपी अग्नि में सभी पदार्थों को विलापन कर तद्रूप बना देना –"होम" कहलाता है, ऐसा तन्त्रसार का मत है। स्वच्छन्दतन्त्र योगिनी हृदयदीपिका, ज्ञानार्णवतन्त्र, सुभगोदयवासना एवं गीता भी इस मत के पोषक हैं। शिवसूत्रों में भगवान् शिव शरीर को ही "हवि" बतलाते है जिसका क्षेमराज अनुसार तात्पर्य है कि स्थूल, सूक्ष्म, कारणादि भेद प्रमातृत्व के अभिमान वाला शरीर ही महायोगी द्वारा परासंवित् - चिदग्नि में हूयमान करने अर्थात् शरीर - प्रमातृता प्रशमन करने से सदैव चिन्मातृता के अभिनिवेश से "हवि" कहलाता है। श्री तिमिरोद्घाट, स्पन्दशास्त्र एवं महार्थमञ्जरी परिमल में माहेश्वरनन्दनाथ भी इसकी पुष्टि करते हैं।

व्रत– अन्न, जल, फलादि वस्तुओं का त्याग- विशेष अथवा किन्हीं नियम-विशेषों का ग्रहण यहाँ व्रत नहीं माना गया है, अपितु सर्वत्र एक जैसे परमेश्वरभाव को ही दृढ़ विश्वास से देखने  के लिए शरीर, घटादि जड़ भावोंको भी उसके रूप में ही अवलोकित करना "व्रत" कहा गया है। शिवसूत्रों में योगी की शरीरवृत्ति ही "व्रत" कही गई है। क्षेमराज अनुसार इसका तात्पर्य है कि शिवांहभाव से वर्तमान योगी का शरीर वर्तन (शारीरिक चेष्टायें करना अर्थात् शरीर को धारण किये रहना) ही "व्रत" है, क्योंकि वह स्वस्वरूप विमर्शात्मक नित्योदित परा पूजा में तत्परता के नियम में अनुष्ठित रहता है। देह-प्राणादि अवस्थित आत्मा को ही शिव समाविष्टत्व कहा जाता है, जैसा कि श्री स्वच्छन्दतन्त्र में कहा हैं–

**सुप्रदीप्ते यथा वह्नौ शिखा दृश्येत चाम्बरे।**

**देहप्राणस्थितोऽप्यात्मा तत् वत् लीयेत तत्पदे॥**

इसलिये ऐसे शिवयोगी का देहस्थिति से व्यतिरिक्त कोई व्रत नहीं है। ऐसे ही मत की पुष्टि श्री त्रिकसार एवं श्रीकुलपञ्चाशिका से भी होती है।

जप – विश्वोत्तीर्ण, विश्वमय, परिपूर्ण शुद्ध एवं अनन्त परम तत्त्व अपना स्वभाव ही है– इस प्रकार का अन्तः परामर्श ही "जप" कहलाता है। ऐसा अभिनवगुप्त का मत है। विज्ञान भैरव के अनुसार परम भाव अर्थात् परमसत्ता में स्वस्वभाव के रूप में बार बार अनाहतनाद (सोऽहम् हंसः की) मैं ही परम हंस शिव परम कारण हूँ जैसा कि स्वच्छन्द तन्त्र में भी कहा गया है कि - **अहमेव परो हंसः शिवः परमकारणम्–**

ऐसी भावना अथवा विमर्श करना ही "जप" कहा गया है। श्रीकण्ठीसंहिता एवं योगिनीहृदयदीपिका में भी ऐसा ही मत अभिव्यक्त किया गया है। ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जी के अनुसार सिद्ध हस्त योगी अकृत्रिम पूर्णाहन्ता में प्रविष्ट होकर जो कुछ भी शारीरिक चेष्टा करता है अथवा जैसा भी व्यवहार एवं प्राणों की चेष्टाओं का आचरण करता है, वह सारा उस के लिये "जप" ही बन जाता है, क्योंकि उसके लिये सभी चेष्टायें मन्त्ररूपता से ही स्फुरित होती है। श्री कालिकाक्रम में निरूपित नीति अनुसार महामन्त्रात्मक अकृतकअंहविमर्शआरूढ़ के लिये जो.जो. आलापादि व्यवहार होता है, वह स्वात्मदेवता के विमर्श में अनवरत आवर्तनात्मा होने से "जप" हो जाता है भगवान् शिव इसी दृष्टिकोण से नित्य ही पराहंभावनामय साधक के लिये उसकी "कथा" (वार्तालाप) को भी "जप" ही मानते हैं।

स्नान – सदाचार में स्नान के प्रमुख स्थान होता है। जैसे बाह्य शुद्धि के लिये नदी, जलाशय, तीर्थादि के जल में डुबकी लगाई जाती है, उसी प्रकार अद्वयनय में आन्तर शुद्धि के लिये जो अद्वय स्वभाव आत्मा के सब तरह से स्वतन्त्र, आनन्द, चिन्मात्ररूप का साक्षात्कार होने पर उसी में समाविष्ट (तल्लीन) हो जाने की स्थिति है वह "स्नान" कही जाती है। "न तो मेरा बन्धन ही है ओर न मोक्ष ही ये तो मल (अज्ञान) के कारण ही भासित होते हें" इस प्रकार की प्रतिपत्ति से अपने आपको निर्मल करना "स्नान" है–ऐसा सिद्ध सोमानन्द  का मत है। शिवसूत्र एवं उसकी विमर्शिनी में भी यही भाव अभिव्यक्त है।

पूजा – विज्ञानभैरव को अनुसार श्री परा देवी सहित भारक भैरव की जिन पुष्प गन्ध, धूप आदि से पूजा की जाती हे, फल, मेवा, खीर आदि से नैवेद्य (भोग,तर्पण) लगाया जाता है, पूजन करने वाला पूजा सामग्री और पूज्य-सब एक ही हैं, वही यथार्थ "पूजन" है, द्वैतदृष्टि आश्रित नहीं। ऐसा ही मत महार्थमञ्जरी परिमल में उद्धृत प्रभाकौल तन्त्र का है कि सर्वाकार , निरामय, परमसत्ता के बोध में स्थूल पूजन की आवश्यकता

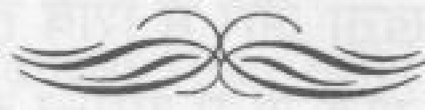
नहीं रहती" मुझे पूजन से कोई तुष्टि नहीं होती एवं न ही पूजन के अभाव में कोई खेद ही होता है। मैं पूजक, पूज्य और पूजा में सदैव एकरस रहता हूँ। अतः मेरी पूजा सदा होती रहती है"–ऐसा विमर्शन ही शिवदृष्टि में "पूजन" कहा गया है। अभिनवगुप्त के अनुसार सर्वव्यापक, सर्वात्मा, परमेश्वर में सदैव सभी दशाओं में ऐक्यबुद्धि से मन का नियोजन ही "पर पूजा" है। शैवाचार्य उत्पलदेव पूजा को परमेश्वरैक्य का आनन्द प्रसर (विकास) मानते हैं, जबकि द्वैतनिष्ठ के लिये यह ईश्वर प्राप्ति का उपायमात्र है। जहाँ द्वैतभाव से पूजन में साधक फल-फूल मेवों एवं विविध भौतिक पदार्थों को अपने इष्टदेव के चरणों में समर्पित करता हैं, वहीं अद्वयनय में उत्पलदेव साधक की आध्यात्मिक उन्नति एवं लोक में भी राग द्वेष के कारण काम, क्रोध, लोभ, मोह और अभिमान को भगवान् के समर्पित करना ही यथार्थ अर्चन मानते है। भगवान् श्रीकृष्ण भी हर्ष, अमर्ष, भय एवं क्रोधादि द्वन्द्वों से सर्वथा मुक्त (निर्लिप्त) भक्त को सर्वश्रेष्ठ एवं प्रिय बतलाते है। इसी प्रकार, उत्पलदेव सकाम भक्त के तरह-तरह के प्रलोभनों एवं वासनाओं से ग्रस्त होकर पूजा करने की अपेक्षा इनको सरल-शुद्ध मन सहित ईश्वर-अर्पण करने को ही उसकी श्रेष्ठ पूजाविधि मानते है। द्वैतनिष्ठपूजन में सांसारिक तत्त्व किसी न किसी रूप में बाधक बने रहते हैं, परन्तु अद्वैत पूजा महोत्सव में सभी छत्तीस तत्व आत्मसंवित् रूप भासित होने से साधक बन जाते है।

**योग** – सिद्ध योगियों द्वारा किये जाने वाले तपविशेष को सामान्य योग के नाम से पुकारते हैं। गणितशास्त्री दो संख्याओं के जोड़ को योग कहते हैं। पतञ्जलि चित्त वृत्तियों के नियन्त्रण को योग मानते हैं। आयुर्विज्ञान औषधियों के सम्मिश्रण अथवा तत्फलस्वरूप बनने वाली औषधी विशेष को योग का नाम देते हैं। याज्ञवल्क्य के अनुसार जीवात्मा और परमात्मा का संयोग अथवा जीवात्मा की परमात्मा में स्थिति समतावस्था ही समाधि अथवा योग है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार परमात्मा के स्वरूप अनुसन्धान रूप विकल्प विशेष ही योग है। अर्थात् परमेश्वर कदापि विकल्प का विषय नहीं बन सकता एवं अपने स्वभाव से ही सदा प्रकाशमान रहता है। उनके विषय में उस प्रकार के दृढ़ विश्वास के साथ आत्मस्वरूप का सतत् विमर्शन करना योग कहलाता है। शिवसूत्र विमर्शिनी में राजानक क्षेमराज पर तत्त्व के साथ ऐवय को योग कहते हैं और परभैवता से सम्पन्न को योगी बतलाते हैं। नेत्रतन्त्र में अपने पराये इस जगत् के सभी वस्तुओं के समान बुद्धिरखना और मैं शिव हूँ अद्वितीय हूँ" इस प्रकार का विमर्शन ही योग हैं भगवान् श्रीकृष्ण ने गीताजी में समत्व बुद्धि को अथवा कर्म कौशल्य को योग माना है। श्री कुल रत्नमाला के अनुसार जो साधक परब्रह्म में एकावहित चित्तवाला

क्षणमात्र के लिए भी रहे वह न केवल स्वयं मुक्त होता है अपितु सारी प्रजा को मुक्त करता है।

ध्यान – विज्ञान भैरव के अनुसार "ध्यान" उसे कहा गया है, जिसमें बुद्धि निश्चला (अत्यन्त स्थिर), निराकारा (विविध आकारों से शून्य) निर्विकारा (परिणामों से रहित), विशुद्धा और निराश्रया (कन्द=मूलाधार, हृदय, द्वादशान्तादि स्थानों का सहारा न होने वाली) होती है। साध्य देवता के शरीर, आँख, मुख, हाथ आदि की कल्पना करना यथार्थ ध्यान नहीं है। सिद्ध सोमानन्द कहते है कि जिस किसी भी इन्द्रिय के द्वारा जिस किसी भी विषय का ज्ञान होता है, यदि उस-उस वस्तु में सम्यक् शिवता की ही अनुभूति होती है, तो यह "ध्यान" कहा जाता है। नेत्रतन्त्र में कहा गया है कि बुद्धि के सत्त्वादि गुणों को प्रशमित (अतिक्रान्त) कर, नियति-आकृति आदि रूपों से निष्क्रान्त हुये (निर्ध्येय), नित्य, व्यापक, स्वयं प्रकाश ध्येय का विमर्श करना ही "ध्यान" होता है। पातञ्जलयोग अनुसार चित्त के नाभि, हृदय, मूर्धा, नासिकाग्र, जिह्वाग्र आदि स्थान विशेष में बद्ध (धारणा) होने के पश्चात् जो वहाँ ध्येयविषयक प्रत्यय (ज्ञान) की एकतानता (सदृश प्रवाह) है, वह "ध्यान" कहा जाता है।

दान – भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में "यज्ञ-दान-तप" को पवित्र करने वाला माना है और बुद्धिमानों को इसे करते रहने की सद्प्रेरणा भी प्रदान की है। इनके सात्त्विक, राजसिक-तामसिक भेद बतलाकर सात्त्विक की प्रशंसा की है। ऐसा ही मत पुराणों एवं महाभारतादि में भी मिलता है। सम्भवतया ऐसा मत लौकिक किंवा स्थूल दृष्टि वालों के दृष्टिकोण से दिया गया है। शैव शास्त्र इसकी व्याख्या अध्यात्मपरक "भैरव याग" की दृष्टि से करते हैं। तदनुसार आत्मपरमेश्वर का ज्ञान ही "दान" है। राजानक क्षेमराज के अनुसार शिव समावेशशाली चैतन्यरूप आत्मा का साक्षात्कार ही दान है अर्थात् स्वयं एवं जिज्ञासुओं को विश्वभेद खण्डित करके परिपूर्ण स्वरूप का ज्ञान प्रदान करना, माया (अज्ञान) बन्धन (मल) का शोधन करना, और पारमार्थिक स्वभाव की इस प्रकार रक्षा करना, सच्छिष्यों को आत्मज्ञान अनुभूत करवाना ही यथार्थ दान (प्रदेय) वस्तु है। ऐसे महापुरुष अपने दर्शन, स्पर्शनादि से दूसरों को भवसागर से पार लगा देते हैं। ऐसा कुलार्णव तन्त्र का मत है।



ॐ नमः परसंविद्वपुषे

# "शैव दर्शन के वातायन से"

*– प्रो० नीलकंठ गुर्टू*

**वास्तविक प्रमाता** – संसार के सारे प्रमेय-पदार्थो में जो घट प्रकाश, पट प्रकाश, देवदत्त प्रकाश इत्यादि रूपों में विलसमान प्रकाशमानता दिखाई देती है- अर्थात् ऐसी प्रकाशमानता, जो उन उन प्रमेय-पदार्थों के अरालों को अपने अपने यथावत् रूप में व्यवस्थित करती रहती है और इन दृश्यमान अगणित नाम-रूपों वाली प्रकाशमानताओं को पारस्परिक संकट में पड़ने नहीं देती है, वह तो उनकी निजी प्रकाशमानता नहीं, प्रत्युत उस उस भाव रूपी द्वार से बाहर की ओर सरकती हुई चित्-प्रकाशमानता ही झलकती रहती है। अगर किसी राजभवन के छेदों (खिड़की इत्यादि) से घर के अन्दर जलते हुए दीप की लौ की प्रकाशमानता बाहर दिखाई देती है वह, निश्चित रूप में, घर के अन्दर जलती हुई दीप शिखा की प्रकाशमानता होती है घर के अंदर या बाहर खड़े दीवारों की नहीं। कहने का तात्पर्य यह कि वास्तविक प्रमातृभाव की प्रकाशमानता देह-प्राण इत्यादि में अवस्थित रहती हुई और करण वर्ग के द्वारों से बाहर की ओर सरकती हुई अंदर के चिाव की ही प्रकाशमानता होती है जड़ शरीर इत्यादि की नहीं। उसी को वास्तविक प्रमातृभाव कहते हैं:-

**प्रमातृत्वं भातं यदपि च शरीरादिनिवहे**
**तथाप्येतद् द्वारा स्फुरति ननु चिन्मात्रनभसः।**
**गृह द्वारैर्ज्योतिः प्रसरति यद् एतद् बहिर् इदम्**
**गृहान्तःस्थस्यैव भवति खलु दीपस्य नियतम्॥**

**न्यग्-भाव** – किसी अभिमानी प्रतिपक्षी को उच्च-पदवी से बलपूर्वक लुड़काकर किसी निचले स्थान पर प्रतिष्ठित करने को न्यग्-भाव कहते हैं।

**राधान्त** – किसी संदिग्ध पदार्थ के विषय में बहुत सारा विचार-विमर्श या वाद-प्रतिवाद करने के उपरान्त जिस बिन्दु पर सर्व-सम्मति से मतैक्य हो जाता है उसको 'राधान्त या सिद्धान्त कहते हैं।

**आब्रह्मकृमिः** – छोटे से कृमि (कीड़ा) से लेकर पर-ब्रह्म तक के सारे जड़ चेतन पदार्थ (आरोह), या परब्रह्म से लेकर छोटे कीड़े तक के सारे पदार्थ (अवरोह)।

(संकेत – स्मरण रहे संस्कृत में 'आङ्=आ' यह उपसर्ग सीमा का निर्धारण करता है।)

अभिक्रम – किसी भी क्रिया के आरम्भ को अभिक्रम कहते हैं।

प्रतिसन्धि – किसी भी पदार्थ के अनुभव कालीन ज्ञान एवं वर्तमान कालीन स्मृतिज्ञान का अनुसन्धान (एकीकरण) करते करते 'सोऽयम् = सोऽहम्' ज्ञान के इस बिन्दु पर पहुंच पाना। (एकीकरण)

अतर्कितचर् – जिस घटना के सन्दर्भ में पहले से किसी प्रकार की जानकारी न रही हो उसको 'अतर्कितचर' कहते हैं।

(संकेत - संस्कृत में 'चरट् = चर' यह प्रत्यय भूतपूर्वता को द्योतित करता है) - "भूतपूर्वे चरट् पाणिनिसूत्र")

अनुज्झित – जिस घटना, विचार या मान्यता इत्यादि का बहिष्कार न किया गया हो।

तिर्यञ्चः – विश्वभर के पक्षिसमाज को 'तिर्यञ्चः' कहते हैं।

मोक्षाभास – शैववादियों का मानना यह है कि शैवेतर दर्शनों में वर्णित मुक्ति सांख्य इत्यादि दर्शनों में वर्णित सुषुप्तिदशा के ही प्रकारान्तर हैं अतः उनको मोक्ष नहीं प्रत्युत 'मोक्षाभास' कहना ही औचित्यपूर्ण है।

यागौकः – घर से बाहर कोई याग करने के लिए साफ की गई भूमि पर बनाए हुए छोटे से मंडप को 'यागौक' कहते हैं।

यियासा – किसी भी उत्कृष्ट साधनानिरत व्यक्ति को अपने आदरणीय गुरुवर्य के पास जाने की इच्छा को 'यियासा' कहते हैं।

स्वतः-सिद्ध – शैव मतावलम्बियों की मान्यता यह कि जो साधक अपने आपको पूर्ण स्वतन्त्र होने का सच्चा ज्ञानी हो, उसके ध्यान, धारणा, अर्चा इत्यादि स्वयं ही चलते रहते हैं, उनकी स्वयं चलन की अवस्था को 'स्वतः-सिद्ध' इतिकर्तृताएँ कहा जाता है।

भेदन – किसी भी ग्राह्य-विषय का ग्रहण करने के अवसर पर विभाग के द्वारा उस पदार्थ का चिद्भाव से और अपने आप में भी एक दूसरे से भिन्नरूप में आभासित होना 'भेदन' कहा जाता है।

अभेदन – स्मृति की वेला पर अभिसन्धि के द्वारा पूर्वकालीन भात एवं वर्तमानकालिक भासमान ज्ञानयुगल का एकीकार होने पर अभेद रूप में आभासित होना अभेदन कहा जाता है। इसी ईश्वरीय कृत्य को दूसरे शब्दों में वियोजन-संयोजन भी कहा जाता है।

आह्निक – प्राचीन गुरुकुलों में कार्यनिरत गुरुजन एक दिन में जितने ग्रन्थभाग की रचना करते थे उसको 'आह्निक' कहा जाता था।

# भाव-गंगा

*'मस्तानि' नाम से प्रसिद्ध श्रीमती राजदुलारी कदलबजू ईश्वरस्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज की आदरणीय शिष्या हैं। कवयित्री पिछले तीन दशकों से भजन व कवितायें लिखने में व्यस्त हैं हाल ही में "मन पम्पोश" नामक भजनावली पुस्तक को प्रकाशित करके इन्होंने अपनी कवित्व शक्ति का पूर्ण परिचय दिया है इनकी रचनाओं में सद्गुरुभक्ति प्रेम, वैराग्य व सन्तोष झलक उठा। आशा है "आत्म ज्ञान" नामक कैसेट की तरह मन पंपोश के गिने चुने भजनों को भी उसी मधुर कण्ठ से संगीतबद्ध कराके मस्तानी परमलोकोपकार करने से नहीं चूकेगी।*

*– सम्पादक*

## मुक्ताकण

हताह रंगरेज़ मन म्यअ रंगनावुम, अंग संग सत्संग म्यय थावुम
छत्यि युसना सुय रंग दावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(2)

मनछुम करान घरअ वातहा, वअतिथ तोर योरना यिमहा
असलंचि थअरि प्यठरूह थावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(3)

घर अ हअविज्यम युस आसि अमर, नफचअन्यि वोर वोरच्य न खबर
ग्वुर शब्दाह न्यथ जपनावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(4)

शिवलूकुक छुम बस अरमान, वातनावुम तोर लड करान
ईश्वरस्वरूपो जुव शिव बनावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(5)

ढ़्चकि छुय अर्धाकार चन्दरम, शाननप्यठ छिय जअटायि थम
हटि शोलवुन वासुकी हावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(6)

त्र्यन भुवनन हुन्द जहर ख्योमुत, नीलकण्ठ नाव च्यय तवय प्योमुत
म्यति अख मेहरि नज़राह त्रावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(7)

शून्यस मंज छुय चोन आसन, मन्य मंजम्यअ छुख सदा मअचि भासन
केंछाह रुत म्यति करनावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(8)

रूज़िन म्यअ रुम रुम चोनुय ध्यान, यहय छय स्मरणय हन्ज पहचान
यमथर थर छम चअलअरावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(9)

आशकन हुन्द छुख जुव त जा़ान, अश्कप्यन्जि प्यठ बिहिथ छुख प्रजलान
मस्तानि मस्ती मंज थावुम, त्याग वानस म्ये बेहनावुम ॥

(II)

अगर सु नजराह मत्यन ति दीहे, बअ वनहअस म्यअ करार हा प्रोवुम
अगर सु सीराह वनिथ म्यअ गछिह, बअ वनहअस सीरि नूर हा प्रोवुम ॥ 1॥

सवाल दिलुक म्यअ छुम, यि क्युथ ज़वाल छुम
अगर सु यीहे म्यअ तूरि नीहे, बअ वनहअस ब्वुड़ करार हाप्रोवुम ॥ 2॥

वनय बअ कूताह वूजिथ थकख माह, अगर सु वसिहे जरा सा असिहे
बअ वनहअस म्ये खुमार हा प्रोवुम ॥ 3॥

जख्मन दि नजराह, खन्यिथ अत्य पजराह,
अगर सु वुछिहेम मनस म्यअ तछिहेम, बअ वनअहस म्ये इशार प्रोवुम ॥ 4॥

म्यअ सारि जिन्दगी करमय च्यय बन्दगी
अगर बअ वदहअ दकन ति लगहअ
ब वनहअस म्ये सु द्वार हा प्रोवुम ॥ 5॥

छ्यनिथ थकिथ साकी अज़ प्योमुत
सु जन गुडय बेहचस सख गोमुत
अगर सु पयमान सअत्यन म्यअ चाविहे
बअ वनहअस म्ये अमार हा प्रोवुम ॥ 6॥

छु मस्तानि हुन्द मचर हा महशूर, तनय ग्वुरसनिश सुमा छि रछदूर
जिन्दय हा मरहअ द्यव तय बअकरहअ, बअ वनहअस म्ये शुमार हा प्रोवुम ॥ 7॥
अगर सु नजराह मत्यन ति दीहे, बअ वनहअस म्ये करार हा प्रोवुम ॥ 8॥

# श्री ईश्वर स्वरूप स्वामी लक्ष्मण जू महाराज की जयन्ती पर श्रद्धेय भेंट

(2003-2004)

कुॅस रूप पूज़्य कुॅस सोरॅय
मॅन म्योन छु मन्दॅर चॅयोन
कन दारिथय प्रथ रूप बूजुथ
रॉजि दिलॅ गोरॅ म्योनॅ॥

क्याह करनॅ तसतीर्थ सॉरिय
यस सपनि साकार
चोनॅ दर्शुन ब्रम्ह मुरच़ मन्जॅ
कति लगिय तस ग्रोन॥

चानि लीला चानि आशचरॅ
तॉज़ छिम हरदम
चरण कमलन हन्ज गरदॅ
छय टोठ सरमाय म्योन॥

चोशवुनिय दामन हुन्दॅय फल
चानि पादुकायि  तल
येमि समर्पण अति छु कोरमुत
तस छुॅ क्याह छारोनॅ॥

परमॅ दृष्ठि हन्जॅ कृपा छम
छाय हन्दि पॉठि सूति
यिथ भुॅ थॅवथस तिथ भुॅ रूज़स
नोव नवियोम सूति प्रोण॥

अशि फेयरेनॅ हुन्द मोखॅत वुरमय
प्राण सूतरस मंज
सोय माल जपनुक दिमम्ये ताकथ
बेय क्याह गछेयम आसोनॅ॥

मुक्त करॅतख प्रॉण म्यॉनिय
चठतुॅ मायायि जालॅ
द्रोत दिथॅ वुफ-वुनेनॅ वेकॉरन
स्थिर कर भाव म्योनॅ॥

नव-निधान छुम चोन अनुग्रह
नतक्याह छि, म्यानि औकातॅ
'राज' छस मूर्ख अॅज्ञानी
केह, छुम नु कुनि हयोनॅ दयोनॅ॥

पर पेइ सु, कति यस सदगोरस सूति ऑसि गॉमच लय।
तस प्रजलि ज्ञानुक सिरय प्रागाश, फालि अन्दरी चोन॥

*— राज दुलारी कौल*

# अतीत के स्वर

॥ ॐ गुरवे नमः॥

श्री १००८ श्री ईश्वरस्वरूप महाराज जी
के शुभ जन्मोत्सव जयन्ती पर भावभीनी भेंट

*— मखनलाल कुकिलू*

## अभिलाष

बतर्जे-अज़वात्यि बूज़ुम मोलम्योन

छुख गुरु दयाये किन्य भरिथ ।
कम्यि वत्यि व वातय यछ थविथ ॥
मन म्योन शंकायव वल्यिथ,
कमि वति ब वातय यछ थविथ
छुस पननि हच़रय हअच़्य फिरिथ ।
कम्यि वत्यि व वातय यछ थविथ ॥

स्वाती नक्षत्रुक छुख प्रवाह
म्योन कावशुप मन रूद जुदाह
असिथ चअ शाह छुक म्वुठ वटिथ । कमि०

आख ग्वुर भम्भुर बन्यिथय म्यिनिश
मनबागपोश म्योन रूद च़मिथ
बूज्यि वूज्यि ति गंगरायि छुस हमिथ । कमि०

वहरअच़ अबुरुक छुख घन्यर
ड़ीशिथ ति मनमोर बे असर
नचनाह ब कर हअ च्यय स्वरिथ । कमि०

वरदान ह्यथ प्रारान च़अ छुख
म्यानि जोल्यि गंड प्यव वहशतुक
भीद गंड चटुस गछि मा खुलिथ । कमि०

ज्यवि कमि वनय आसन सज़ाव
मन चादरि दागव कर म्यि जाय
हारस ति माघ गोम कठ कड़िथ । कमि०

छुख ग्वुर पुन्यिम हन्ज पूर जून
गाश अन मि दासस कास म्यि ग्रून
बअज़िगर गछयम मा बअज्यि दिथ । कमि०

अछि म्यानि जानावर चकोर
चअनिस रुयस बस छुस ब लोर
त्यंगलन ति छुम शहजार वुरिथ । कमि०

ह्यस दिथ ति बेहिस छुम यि मन
ओसुस दिवान च्यय कुन न तन
मिच्य प्यठ ब प्योमुत वुन्य हरिथ । कति०

ही ग्वुर च़अमुचराव कोछि भर
म्योन प्राणदीव छु दरबदर
बुथ ह्यथ बअ क्याह गछ प्वुत फिरिथ । कमि०

पूज़अरय ब च़ोन छुस सर नमिथ
ज़न्यिम न पअज़ पूज़ छुस नटिथ
प्राण चोंग ति हन्यि हन्यि गोम शमिथ
कमि वति ब वातय यछ थविथ ॥

## अरमान

बतर्जे - मअज्य शारिकाय कर दया ।

सद्गुरो ही ईश्वरो करतम अज़ मिहरबानी।
हरतम सर्व संकट ब पूजहअय पाद च़अनी॥

(२)

ईशभरि चीन दरबार, मटि छय सअन्यी खार।
मंदछान त्रोवुय च्य भार, अस्य छि मूल अज्ञअनी हरतम सर्व० ॥

(३)

नुन दरशुन जगतस, दितुथ संकट हुरथस
वन्य दिबान तथ ब जलबस रोजहस न्यथ स्वअरअनी ॥ हर० ॥

(४)

मन यारबल तननाव ल्यम्बिमंज पंपोश चार
छम हा माय चान्यि लोल व्यथ जोर शोर सअस ग्रअजअन्यी ॥ हर० ॥

(५)

चोन परतव यल्यि प्यव, गाश आव कायनातस ।
तवय वैशाख मासस चाव ह्यथ प्रारअनी ॥ हरतम ॥

(६)

पदि पदि चिक चाव सान, म्यअन्य अनहअरय अरमान ।
लोल क्रख दिथ वखनान, सोन छुख चअ यारि ज़अनी ॥ हरतम ॥

(७)

संवित् रूपुक प्रकाश घटअ कासान अनान गाश।
नव्यि आयि अस्यि स्यद्ध कअर, चअन्य अमृत-वअन्यी ॥ हरतम ॥

(८)

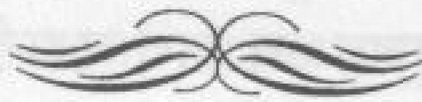
नालव क्वलव शोर क्वुर, गुलिलालन च्यअ लोल भ्वुर।
नगमअ यम्बर जलब क्वुर, शबनम पाद छलअन्यी ॥ हरतम ॥

(९)

ज्ञान चोन शहलावान, वसलुक ज़ाम चावान।
घेन्य घअटअ व्यगलअविथ, जून गाश हावअन्यी ॥ हरतम ॥

(१०)

यनअ दूरयर ह्युतअथम स्वख त अरमान नीथम
असि चोनुय चिकचाव वुन्य कर तअ नजरि सअन्यी ॥ हरतम ॥



# स्वस्वरूप को प्रणाम

**नौमि चित्प्रतिभां देवीं परां भैरवयोगिनीम् ।**
**मातृमान प्रमेयांश शूलाम्बुजकृतास्पदाम् ॥**
प्रमाता, प्रमाण प्रमेय रूपी त्रिशूल पद्मासना,
चिद्भैरवरूप परमशिव से अभिन्ना, परारूपा,
संवित् देवी को मैं प्रणाम करता हूँ॥

**नौमि देवीं शरीरस्थां नृत्यतो भैरवाकृतेः ।**
**प्रावणमेघ घन व्योम विद्युल्लेखा विलासिनीम् ॥**
वर्षा ऋतु की काली मेघ माला से आवृत
बिजली की कौंध सी प्रकाशमान,
भैरवरूपा तथा अपने ही शरीर में विद्यमान
संवित् देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

**उद्धरत्यन्धतमसात् विश्वमानन्द वर्षिणी ।**
**परिपूर्णा जयत्येका देवी चिच्चन्द्र चन्द्रिका ॥**
अविद्या के गहरे अन्धेरे से निकाल कर
सारे संसार का उद्धार करने वाली परम शिवरूप
चन्द्रमा की ज्योत्स्ना सी, परिपूर्णा,
आनन्द ही आनन्द बरसने वाली, अद्वितीया
संवित् देवी को मैं प्रणाम करता हूँ।

**सर्व जगत् स्वदेहं वा स्वानन्द भरितं स्मरेत् ।**
**युगपत् स्वामृतेनैव परानन्दमयो भवेत् ॥**
एक परिपूर्ण योगी सारे संसार को तथा अपने स्वरूप को अपने ही आनन्द से परिपूर्ण हो एक साथ ध्यान करें तो अवश्य ही वह परमानन्द से प्रकाशित होता है।



# ISHWAR ASHRAM TRUST

(FOUNDED BY SRI ISHWAR SWAROOP SWAMI LAKSHMAN JOO MAHARAJ)

**Srinagar Ashram:**
Ishber Nishat.
P.O. Brain,
Srinagar (Kashmir)-190 021
Tel. : 0194-2461657

**Jammu Ashram:**
2, Mohinder Nagar,
Canal Road,
Jammu (Tawi)-180 016
Tel. : 0191-2553179, 2555755

**Delhi Ashram:**
R-5, Pocket 'D',
Sarita Vihar,
New Delhi-110 044
Tel. : 011-26958308, 26974977

Jammu

No.:IAT/1076/03 15th April, 2003

Jai Gurudev

Shri Nilakanth Ji Raina (Bai Saib), the younger brother of our Gurudev, Ishwar Swaroop Swami Lakshman Joo Maharaj, and the last child of Shriyut Narayan Dasji Raina, better known as NAVA NARAN, attained his Nirvana yesterday the 14th of April, 2003 at Gurgaon, Haryana.

He in the later part of his life, i.e. after Gurudev's MahaSamadhi on 27th of September, 1991, lived more a saintly life than a house holder. Bai Saib was, by nature, very very gentle, silent and a devout follower of Gurudev, not only this, many people were mistaken for taking him as elder brother of Swami Ji Maharaj, because he very much resembled him.

Whole of the Guruparivar met and offered their obesience to the departed soul and prayed to Guru Maharaj to lead it to the region of light and purity and to bestow enough courage to the bereaved family and his relations.

Sd/–
(B. N. Koul)
Trustee
Ishwar Ashram Trust

**N.B. :** *Similar condolence meeting was held on the stipulated date at Srinagar and Delhi Ashrams also and two minutes silence was observed for the upliftment of departed soul. May Sadguru Maharaj bestow on him eternal peace and relieve him from the pangs of life and death.*